भारतीय वाङ्मय

हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यिक-सांस्कृतिक समाचारों की मासिक पत्रिका

वर्ष 6 **नवम्बर** 2005 **अंक** 11

विश्वविद्यालय की वैश्विकता

'भारतीय वाङ्मय' के सितम्बर 05 के अंक में 'कथन' के अन्तर्गत यह टिप्पणी अत्यन्त विचारणीय है—''विश्वविद्यालय को विश्वजनित होना चाहिए।'' आज विश्वविद्यालय क्षेत्रीय होते जा रहे हैं और क्षेत्र विशेष के लोग यह सोचने लगे हैं कि विश्वविद्यालय उनके क्षेत्र के लोगों के लिए ही है, बाहर के व्यक्तियों के लिए नहीं। ऐसे विश्वविद्यालय वैश्विक तो रह ही नहीं जाते, राष्ट्रीय भी नहीं रह पाते, जबकि एक विश्वविद्यालय में क्षेत्र राष्ट्र और विश्व—तीनों का उचित समावेश होना चाहिए। क्षेत्रीयता अधिक हो सकती है, पर राष्ट्र और विश्व पर केवल क्षेत्रीयता का हावी हो जाना उचित नहीं है। इधर के कुछ वर्षों में क्षेत्रीयता का बहुत विस्तार हुआ है जो 'विश्व' नाम पर आधारित शिक्षा संस्थाओं के लिए चिन्ता का विषय है। अब व्यक्ति आत्म विस्तार के स्थान पर संकुचित होता जा रहा है—

तपस्वी, आकर्षण से हीन,
कर सके नहीं आत्म विस्तार।

वैश्विक शिक्षा संस्थाओं अर्थात् विश्वविद्यालयों के साथ एक विडम्बना और बढ़ती जा रही है—उनके साथ नेताओं का नाम जोड़ने की। आज स्थिति यह है कि कोई विश्वविद्यालय बिना नेता के नाम के नहीं रह गया है। आरम्भ में विश्ववाची संस्थाओं के साथ नेताओं के नाम नहीं थे। धीरे-धीरे नाम का प्रवेश हुआ और बढ़ता चला गया। आज एक नेता के नाम को तो सात विश्वविद्यालय समर्पित हैं। यह ज्ञानदायी संस्थाओं का मखौल है। जब कोई संस्था किसी नेता के नाम से जुड़ती है तो उसमें राजनीति का प्रवेश तो होता ही है, संस्था अत्यन्त संकुचित भी हो जाती है। ऐसे गिने-चुने नाम ही हो सकते हैं जो संस्था को संकुचित नहीं करते। अपने पूर्वी योरोप के प्रवास में मैंने किसी विश्वविद्यालय के साथ नेता का नाम नहीं देखा। यहाँ तक कि कोई मार्ग, संग्रहालय, कलादीर्घा, चिकित्सालय या हवाई अड्डा अथवा भवन आदि भी किसी नेता के नाम पर नहीं है। बुलगारिया की राजधानी सोफिया में नाट्यशाला वहाँ के महान कवि इवान वाज़ोव के नाम पर है—इवान वाज़ोव थिएटर। कला दीर्घा भी इन्हीं के नाम

शेष पृष्ठ 4 पर

हे देश के कर्णधार

आज गाँव-गाँव में, नगर-नगर में प्रत्येक जिले में लोकतंत्र की अभिव्यक्ति पंचायत और सभासद के चुनाव के रूप में हो रही है। प्रदेश स्तर पर विधायक और केन्द्र स्तर पर सांसदों को चुनाव जनता के वोट के माध्यम से होता है।

चुनाव में खड़े प्रत्याशी को अपने कर्त्तव्य का कितना ज्ञान है और मतदाता को अपने अधिकार और नीर-क्षीर विवेक का कितना बोध है। स्वतंत्रता के 58 वर्ष बाद भी क्या जनता को उनके अधिकारों और कर्त्तव्य का ज्ञान कराया जा सका? बाहुबलियों के बल पर खड़ा यह जनतंत्र देश को किधर ले जा रहा है। सरकार देश में विकास की बात करती है, भौतिक साधनों की बात करती है, किन्तु उस विकास के लिए लोकमानस को शिक्षित-प्रशिक्षित किया गया? कम्प्यूटर के युग में सब कुछ सहज होने के बावजूद उसका ज्ञान तो चाहिए। आज किसी भी क्षेत्र में नौकरी पाने के लिए निर्धारित योग्यता की अपेक्षा होती है, प्रतियोगिता परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती है। किन्तु लोकतंत्र के नियामक पदों के लिए किसी योग्यता की आवश्यकता नहीं। पार्टी निष्ठा, बाहुबल, जातीय समीकरण आर्थिक सम्पन्नता अपेक्षित योग्यता है। क्या उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि उन्हें पंचायत के नियम कानून, सभासद के लिए नगरपालिका के कर्त्तव्य, विधायक और सांसद को भारत के संविधान और विधान सभा तथा संसद की प्रक्रिया की जानकारी हो। संविधान निर्माताओं ने इस पर ध्यान दिया होता तो आज चुनाव के नाम पर हत्या, लूट, अपहरण आदि नहीं होता।

जनतंत्र के कर्णधारों कुछ तो करें, ऐसे महानुभाव जिनका अपना निजी संविधान है, जो भारत की संसद द्वारा स्वीकृत संविधान की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, उनसे देश की रक्षा करें।

ग्राम पंचायतों में क्या हो रहा है? स्त्री पंचायत की प्रधान चुनी जाती हैं, सत्ता प्रधानपति (ग्राम प्रधान महिला की पति) के हाथ में होती है। नतीजा है कि पंचायत चुनाव में परोक्ष रूप से गाँव में शिखण्डी महिलाओं के पति के हाथ में सत्ता रहती है।

देश के कर्णधार विचार करें। भावी विधायकों और सांसदों की योग्यता निर्धारित करें, प्रत्याशी बनने के पूर्व उनकी परीक्षा हो तभी उन्हें चुनाव में भाग लेने दिया जाय। गाँव-गाँव जनपद-जनपद में प्रशिक्षण के लिए अनिवार्य रूप से प्रारम्भिक स्तर के पुस्तकालय स्थापित करें। उन्हें समसामयिक विषयों पर पत्र-पत्रिका, पुस्तकें सुलभ करायें। भारतीय संविधान तथा जन-प्रतिनिधि से संबद्ध विषयों पर सरल बोधगम्य भाषा में पुस्तकों की व्यवस्था करें ताकि उनमें जागरूकता आए। युवकों के लिए रोजगारपरक, ज्ञानवर्धक, मनोरंजक तथा संवेदनशील साहित्यिक पुस्तकों की व्यवस्था करें। इसके लिए उचित स्थान, आवश्यक उपकरण तथा प्रशिक्षित व्यक्ति जो विद्यालय का अध्यापक भी हो सकता है की व्यवस्था करें। यह देश की जनता को जनतंत्र की महत्ता बताने ओर विकास की ओर अग्रसर करने का पहला चरण होगा।

—पुरुषोत्तमदास मोदी

यत्र-तत्र-सर्वत्र

पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं का निर्यात

भारत से 80 से अधिक देशों को 10 करोड़ डालर (लगभग 430 करोड़ रुपये) की पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का निर्यात हो रहा है। अंग्रेजी प्रकाशनों के मामले में अमेरिका और ब्रिटेन के बाद भारत का ही स्थान है। भारत में प्रकाशित पुस्तकें अपनी छपाई और विषयवस्तु की गुणवत्ता के कारण दुनियाभर में पसन्द की जा रही हैं। भारतीय प्रकाशन उद्योग पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बढ़ा है और विश्व का छठा बड़ा प्रकाशन उद्योग बन गया है। भारत में हर वर्ष 24 भाषाओं में 70 हजार से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित किए जा रहे हैं।

द्विखंडिता की मुक्ति

तसलीमा नसरीन की प्रतिबन्धित किताब 'द्विखंडिता' से न्यायालय के द्वारा पाबंदी हटा ली गयी है।

'द्विखंडिता' पर प्रतिबन्ध लगाने की तैयारी बड़े नाटकीय ढंग से की गयी थी। सबसे पहले बांग्ला भाषा के कुछ लेखकों ने हल्ला किया था, फिर कुछ धार्मिक समूह बोले थे कि उनके धर्म को इस किताब से खतरा है। फिर प्रशासन ने पाबंदी लगा डाली थी। मार्क्सवादी पार्टी के प्रशासन ने ऐसा किया था। यह कोई अच्छी बात नहीं थी। जो पार्टी स्वयं अपनी आजादी की हिफाजत के लिए, जनतंत्र की हिफाजत के लिए आपातकाल के खिलाफ सक्रिय रही, जो पार्टी कट्टरवादी हिन्दुत्ववादी ताकतों के द्वारा कला और संस्कृतिकर्मियों पर किये जाते हमलों के खिलाफ आगे-आगे रही, वह क्यों अचानक एक लेखिका की आजादी के मसलों पर, एक लेखक वर्ग के दबाव में आ गयी, इस बात की जवाबदेही उसे करनी चाहिए। **—सुधीश पचौरी**

हिन्दी राष्ट्र की आधिकारिक भाषा

भारत सरकार ने हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने की दिशा में प्रयास तेज कर दिया है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए युद्ध-स्तर पर प्रयास हो रहे हैं। इस दिशा में पोलैण्ड, हंगरी, बुल्गारिया, दक्षिण कोरिया, त्रिनिडाड, टोबैगो, रोमानिया, तुर्की, चीन, सूरीनाम और रूस में हिन्दी प्रोफेसर नियुक्त हुए हैं। रूस, मिस्र, गुयाना, सूरीनाम, इण्डोनेशिया, ब्रिटेन, जर्मनी, कजाकिस्तान, उज्बेकिस्तान, त्रिनिदाद, टोबैगो, दक्षिणी अफ्रीका, श्रीलंका और ताजिकिस्तान में 15 भारतीय सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना की गयी है जिनका प्रारम्भिक कार्य भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना हे।

मारीशस में एक हिन्दी सचिवालय की स्थापना की जा रही है। सचिवालय पूरे विश्व में हिन्दी के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं संघटनों के बीच समन्वय स्थापित करेगा। मारीशस, फिजी, त्रिनिडाड, टोबैगो, ब्रिटेन, नेपाल और सूरीनाम में हिन्दी अधिकारियों की नियुक्ति की गयी जो हिन्दी की पत्रिकाएँ भी छाप रहे हैं तथा जो हिन्दी फिल्मों, सम्मेलनों, साहित्यिक कार्यक्रमों, गोष्ठियों, कवियों के सम्मान आदि विभिन्न कार्यक्रमों से भाषा को बढ़ावा देने की चेष्टा में रत हैं और सफलता भी अर्जित की है।

हिन्दी सप्ताह

14 सितम्बर 2005 को हिन्दी दिवस के शुभ अवसर पर आगार अध्ययन संस्थान, ओ०एन०जी०सी०, अहमदाबाद ने डॉ० मालती दुबे, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया।

इस अवसर पर अतिथि डॉ० दुबे ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की उक्ति याद दिलाई, उन्होंने कहा था—''जिस देश की राष्ट्रभाषा न हो, वह देश गूँगा है''। डॉ० दुबे ने इस बात पर ध्यान आकर्षित किया कि वैश्वीकरण के इस युग में हमें अंग्रेजी से कोई दुराव नहीं है किन्तु हमें हिन्दी के साथ अन्य प्रान्तीय भाषाओं से भी पूर्णत: जुड़कर रहना होगा। भारत के बाहर रहनेवाले भारतवासियों को हिन्दी एकजुट करके रखती है वे चाहें अमेरिका में हो, या कहीं और, जब आपस में मिलते हैं तब हिन्दी में ही बात करते हैं। हमारे नेता जैसे अटलबिहारीजी, नरसिंह राव ने यू०एन०ओ० में हिन्दी में भाषण दिया तो हम सबको हिन्दी प्रयोग करने में गर्व महसूस करना चाहिए। डॉ० दुबे ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं डॉ० अम्बाशंकर नागर की उक्तियों को भी उद्धरित किया।

हिन्दी भारत की गंगा है,
यह जन से जन को जोड़ेगी;
यह अवरोधों को तोड़ेगी
निर्वाण सुता यह गंगा है।

प्रो० हर्षे
केन्द्रीय विवि इलाहाबाद के प्रथम कुलपति

केन्द्रीय विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति बनने का गौरव प्रो० राजेन्द्र गोविन्द हर्षे को प्राप्त हुआ है। वे अभी तक हैदराबाद विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत थे। उन्होंने 13 अक्तूबर 2005 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय की कमान सँभाल ली।

प्रो० हर्षे हैदराबाद से वाराणसी तक हवाई जहाज से आए। वहाँ से सड़क मार्ग से इलाहाबाद पहुँचे।

शास्त्रीजी की राजभवन को देन

प्रख्यात साहित्यकार एवं पूर्व राज्यपाल उत्तर प्रदेश स्व० विष्णुकान्त शास्त्री राजभवन के अध्ययन कक्ष में ढेर सारी उपयोगी पुस्तकों का भण्डार छोड़ गये हैं। विगत दो अक्टूबर 2005 को वर्तमान राज्यपाल महामहिम श्री टी०वी० राजेस्वर ने शास्त्रीजी की सराहना करते हुए बताया कि शास्त्रीजी साहित्यिक होने के साथ पुस्तकों के गम्भीर अध्येता थे, जब उन्होंने राजभवन छोड़ा तो वहाँ के अधिकारियों व भविष्य में आने वाले राज्यपालों हेतु ढेर सारी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें छोड़ गये। **—एल० उमाशंकर**

प्रेमचंद के नाम अन्तर्राष्ट्रीय फेलो

साहित्य अकादमी ने हिन्दी के अमर कथाकार प्रेमचंद की 125वीं जयन्ती के मौके पर उनकी स्मृति में पाँच लाख रुपये की अन्तर्राष्ट्रीय फेलोशिप शुरू करने की घोषणा की है। यह फेलोशिप दक्षिण एशिया के किसी देश के लेखक को प्रदान की जायेगी।

अकादमी के अध्यक्ष गोपीचंद नारंग के अनुसार फेलोशिप की अवधि अधिकतम तीन महीने तक की होगी। इस दौरान चयनित लेखक भारत प्रवास के दौरान देश के विभिन्न स्थानों पर व्याख्यान देंगे और अपनी रचना का पाठ करेंगे। पहले फेलो के चयन के लिये दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय संगठन दक्षेस देशों में भारतीय दूतावासों साहित्य अकादमी के कार्यकारी मण्डल के सदस्यों तथा वरिष्ठ लेखकों तथा विद्वानों और प्रमुख सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों से लेखकों के नाम आमंत्रित किये जा रहे हैं। अन्तिम चयन एक निर्णायक समिति करेगी। हर साल के लिए अलग समिति गठित होगी।

14 सत्रों में चलने वाली संगोष्ठी में कैलिफोर्निया (अमेरिका), इटली, पोलैंड, चेक गणराज्य, पाकिस्तान, रूस, इंग्लैंड और हालैंड से लेखक भाग लेंगे। पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व डान के सुपरिचित स्तम्भ लेखक डॉ० मुहम्मद अली सिद्दीकी कर रहे हैं।

अकादमी प्रेमचंद पर 27 अक्टूबर से चार दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी भी आयोजित किया है जिसमें 8 देशों के जाने-माने विद्वान तथा भारत के करीब 60 प्रसिद्ध लेखक भाग ले रहे हैं। संगोष्ठी का उद्घाटन अमरीका के मशहूर विद्वान क्रिस्टोफर रोलैंड किंग ने किया।

बच्चे और पुस्तकालय

आज शहर के अधिकतर निजी स्कूलों में पुस्तकालय है। पर सरकारी स्कूलों में नहीं है। जिन स्कूलों में है वहाँ की अधिकतर पुस्तकें अलमारियों में बन्द रहती हैं। इस डर से कि अगर फट गईं तो हर्जाना कौन देगा?

यह बहाना छोड़ना होगा कि पुस्तकालय के लिए जगह कहाँ हो सकती है? जहाँ चाह, वहाँ राह। कैसी हों पुस्तकें? परी और जादू की, भूत और राक्षस की, राजा और रानी की, जंगल और पानी की या फिर दुनिया की जो सैर कराएँ, चाँद तारों से बात कराएँ, अन्तरिक्ष का रहस्य सुनाएँ, इंटरनेट कम्प्यूटर समझाएँ।

पुस्तकों का बच्चों के मन पर बहुत गहरा प्रभाव होता है इसलिए उन्हें अच्छी और आकर्षक पुस्तकें देनी चाहिए। इसलिए हर पुस्तक पढ़कर उसका चयन किया जाना चाहिए। आज का युग विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सूचना का है। ऐसे में बच्चों को इन विषयों से सम्बन्धित किताबें भी देनी चाहिए। बच्चों को उनकी उम्र के मुताबिक किताबें दी जानी चाहिए। पाँच और चौदह आयु वर्ग के बच्चों को एक जैसी पुस्तकें नहीं दी जा सकती?

पुस्तकों और बच्चों का करीब आना पठन-पाठन में रुचि बढ़ाने का एक उजागर रहस्य है। अगर पुस्तकें बन्द रखी रहेंगी, अगर बच्चों को यह कहकर टोका जाएगा कि किताब फट जाएगी या खराब हो जाएगी तो बच्चे कभी नहीं पढ़ेंगे। यह स्थिति होने पर उलटा बच्चों को ही दोष नहीं देना चाहिए। यहाँ दोष बच्चों का नहीं, बड़ों का है। इसीलिए अध्यापकों, अभिभावकों और लाइब्रेरी संचालकों को अपनी आदतें सुधार कर बच्चों को पुस्तकालयों में आजाद छोड़ना होगा ताकि वे खुद पुस्तकों से दोस्ती कर सकें।

स्मृति शेष

प्रख्यात साहित्यकार निर्मल वर्मा का तिरोधान

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक, चिंतक और मनीषी निर्मल वर्मा का 25 अक्टूबर 2005, मंगलवार की रात लम्बी बीमारी के बाद देहावसान हो गया। वे 76 वर्ष के थे। उनके परिवार में पत्नी गगन गिल और एक पुत्री हैं। पिछले काफी दिनों से वे फेफड़े की बीमारी से पीड़ित थे।

निर्मल वर्मा का जन्म तीन अप्रैल, 1929 को शिमला में हुआ। उनकी उच्च शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय में हुई। निर्मल वर्मा ने चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में हिन्दी अध्यापन किया। उन्होंने मोहन राकेश, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, अमरकांत और राजेंद्र यादव के साथ नई कहानी आन्दोलन को ऊँचाइयों तक पहुँचाया। उनकी कहानियाँ 'लन्दन की एक रात' और 'परिंदे' नई कहानी आन्दोलन में मील का पत्थर मानी जाती है। इसके अलावा उन्होंने अपने लम्बे चेकोस्लोवाकिया प्रवास के दौरान कारेल चापेक सरीखे मशहूर कहानीकारों की कहानियाँ हिन्दी में प्रस्तुत कीं। उनके मशहूर उपन्यासों में 'अन्तिम अरण्य', 'रात का रिपोर्टर' और 'लाल टीन का छत' शामिल है।

1959 में प्रकाशित उनकी कृति 'परिन्दे' ने हिन्दी साहित्य को नया आयाम दिया। भारतीय साहित्य जगत में निर्मल वर्मा एकमात्र ऐसे साहित्यकार थे जिनकी कृतियों का विदेशी भाषाओं में सबसे ज्यादा अनुवाद किया गया। 1999 में उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

राष्ट्रीय पुस्तक मेला, लखनऊ

24 सितम्बर — 3 सितम्बर 2005

राष्ट्रीय पुस्तक मेले में विश्वविद्यालय प्रकाशन के स्टाल पर

24 सितम्बर 2005 को लखनऊ के बलरामपुर गार्डन में आयोजित तीसरे राष्ट्रीय पुस्तक मेले का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की अनुपस्थिति में उनके प्रतिनिधि के रूप में विशेष सचिव श्री हरिचरण प्रकाश ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा—पुस्तकें पहले ज्ञान-मनोरंजन की एकमात्र माध्यम थीं, लेकिन आज दृश्य माध्यमों के रूप में उनके सामने बड़ी चुनौतियाँ हैं, यद्यपि पुस्तक दृश्य माध्यमों की स्रोत हैं। दृश्य माध्यम जहाँ विचार को एक निश्चित दृश्य पर केन्द्रित कर देते हैं, वहीं पुस्तकें विचार का अनन्त स्थान उपलब्ध कराती हैं।

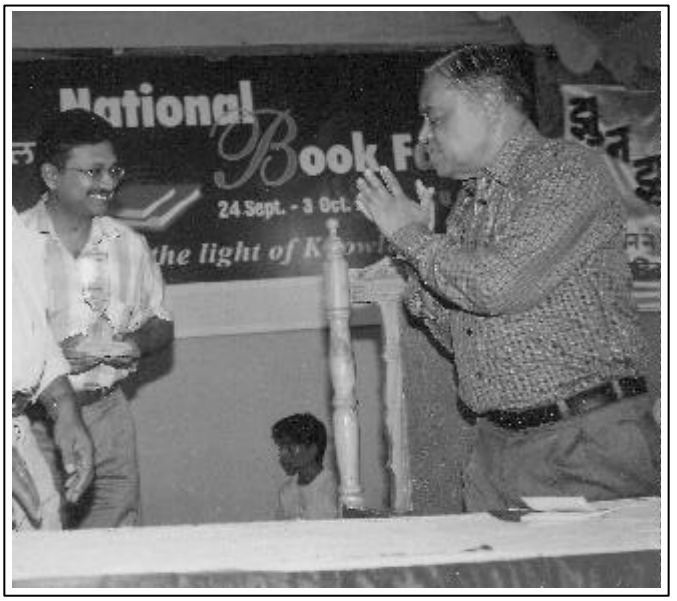

लखनऊ के महापौर श्री एस०सी० राय विश्वविद्यालय प्रकाशन के पराग मोदी को पुरस्कार प्रदान करते हुए

मेले में 80 प्रकाशकों ने 135 स्टाल लगाये। विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी का स्टाल डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त के प्राचीन इतिहास विषयक, डॉ० मोतीचन्द्र के 'काशी का इतिहास', एकनाथ की 'श्रीमद् एकनाथी भागवत', गोपीनाथ कविराज की आध्यात्मिक पुस्तकें, डॉ० रामचन्द्र तिवारी की समीक्षा साहित्य आदि के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा।

मेले का समापन लखनऊ के महापौर (मेयर) श्री एस०सी० राय ने किया, इस अवसर पर मेले में भाग लेने वाले प्रकाशकों को पुरस्कृत भी किया।

अंतर्जगत के कथाकार जैनेन्द्र कुमार की जन्मशती
(1805-1988)

प्रेमचंद की यथार्थवादी कथा-यात्रा के दूसरे सहयात्री मनोविश्लेषक जैनेन्द्रकुमार का यह जन्मशती वर्ष है। प्रेमचंद के 25 वर्ष बाद 2 जनवरी 1905 को जन्मे जैनेन्द्रकुमार ने अपनी कहानियों, उपन्यासों, निबन्धों आदि में बहिर्जगत का अंतर्जगत में प्रवेश कराया। जैनेन्द्रजी के शब्दों में—''साहित्य की कसौटी वह संस्कारशीलता है जो हृदय से हृदय का मेल चाहती और एकता में निष्ठा रखती है। सहृदय का चित्त मुदित करता है, वह साहित्य खरा, संकुचित करता है, वह खोटा है।''

जैनेन्द्रजी की सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके उपन्यासों के कारण प्राप्त हुई। परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, जयवर्द्धन, मुक्तिबोध, दशार्क आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। उनके बहुचर्चित उपन्यास त्यागपत्र की नायिका मृणाल कहती है—''श्रद्धा से मरना भी सार्थक है, पर श्रद्धा गई तो पास क्या रह जायगा।'' समस्त अन्तर्विरोधों के बावजूद जैनेन्द्रजी अपने विविध रचना संसार के कारण हिन्दी जगत के श्रद्धास्पद हैं।

भारतीय पेट्रोलिय संस्थान, देहरादून हिन्दी माह समापन समारोह के अवसर पर

विशिष्ट अतिथि **डॉ० बलदेव वंशी**—''भारतीय भाषाएँ मात्र भाषा नहीं, वाणी भी हैं। वाणी अर्थात्–आत्मा की आवाज। वह भाषा जिसमें दर्द फूटे, वाणी है। संतों की कविताएँ मात्र कविता नहीं वाणी हैं क्योंकि उन्होंने दूसरों की पीड़ा को आत्मसात् किया। विश्व की अन्य भाषाओं और भारतीय भाषाओं में यही अन्तर है कि भारतीय भाषाएँ आत्मा से जुड़ी हैं।''

समारोह के अध्यक्ष **प्रो० श्रोत्रिय**—बाज़ारवाद के सहारे आज भारतीय भाषाओं की स्वतंत्रता को बाधित कर मानसिक और आत्मिक साम्राज्यवाद चल रहा है। हमारी नई पीढ़ियाँ अपनी संस्कृति, चेतना और विरासत को भूल रही है। समारोह के संयोजक **डॉ० दिनेश चमोला** हिन्दी स्वाधीनता का पर्याय रही है। वह संस्कृति, संस्कार, चेतना व विरासत की भाषा है।

हरियाणा में इंगलिश कलचर

हरियाणा भूमण्डलीकरण की दिशा में अग्रसर है। हरियाणा के विकास में उसकी भाषा बाधक है, अत: हरियाणा के मुख्यमंत्री ने हरियाणा के स्कूलों में अनिवार्य रूप से अंग्रेजी पढ़ाने का निश्चय किया है। इसके लिए 7100 अंग्रेजी अध्यापकों की नियुक्ति की जायगी। इससे कान्वेन्ट स्कूलों का विकास होगा जहाँ से अंग्रेजी अध्यापक निकलेंगे। अंग्रेजी पढ़ने से बच्चों की वेशभूषा, आचार-विचार सभी में बदलाव आयेगा और इस प्रकार हरियाणी-अंग्रेजी मिश्रित संस्कृति का विकास होगा। कहा जाता है हरियाणा में कल्चर के नाम एग्रीकल्चर है, अब इंगलिश कल्चर होगा।

अरविंद सहज समांतर कोश

अरविंद कुमार, कुसुम कुमार

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली

मूल्य : 395.00

पृष्ठ 1 का शेष

पर है। सोफिया का विश्वविद्यालय वहाँ के एक संत के नाम पर है—'दी सोफिया यूनिवर्सिटी सेंट क्लीमेंट ओहरिदस्की'। प्रसिद्ध शहर प्लोवदिव की पाँचवीं शताब्दी में निर्मित छह हजार दर्शकों वाली नाट्यशाला रोमन थिएटर कहलाती है।

अस्तु, विश्वविद्यालय स्तर जैसी बड़ी संस्थाओं का बड़प्पन—उनकी वैश्विकता सुरक्षित रहे, यह राजनेताओं और जनता, सबको सोचना है।

—डॉ० श्रीप्रसाद

लोकार्पण

'सूर्य उवाच' का लोकार्पण

बायें से दायें : डॉ० परमानन्द पांचाल, डॉ० कर्ण सिंह, डॉ० अजितकुमार, रचनाकार नरेन्द्र लाहड़

16 सितम्बर 2005 को दिल्ली में कविवर नरेन्द्र लाहड़ की काव्य-कृति 'सूर्य-उवाच' का लोकार्पण डॉ० कर्ण सिंह ने किया।

डॉ० कर्ण सिंहजी ने कहा, सूर्य तो कभी व्यथित नहीं होता, अपितु व्यथित कवि ने अपनी अंतर्व्यथा सूर्य के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। उन्होंने स्वीकार किया कि हमारे सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का अवश्य ह्रास हुआ है। साहित्यकारों को चाहिए कि अपनी दृष्टि मात्र अपने देश तक ही संकुचित न रखें, अपितु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को लेकर विश्वव्यापी दृष्टिकोण अपनाए। समय और परिस्थितियों को देखते हुए प्रत्येक भाषा की आवश्यकता का ध्यान व सम्मान करना चाहिए।

डॉ० गंगाप्रसाद विमल ने 'सूर्य उवाच' को एक पठनीय पुस्तक कहा और बताया कि इस कृति के माध्यम से अनेक ज्वलित प्रश्नों को उठाया गया है जिन पर ग़ौर करना आवश्यक है। अध्यक्ष डॉ० अजीत कुमार ने कवि को और गहन चिंतन के लिए प्रेरित किया और एक महाकाव्य की सम्भावना व्यक्त की।

'सूरज का सातवाँ जन्म' का लोकार्पण

24 सितम्बर, 2005, हिन्दी भवन सभागार, नई दिल्ली में **सुरंजन** की सातवीं काव्यकृति 'सूरज का सातवाँ जन्म' का लोकार्पण **डॉ० नामवर सिंह** ने किया।

मंच पर डॉ० नामवर सिंह, डॉ० गंगाप्रसाद विमल, श्री महेश दर्पण, गोविन्द व्यास, श्रीमती मीरा शलभ, कमल कपूर, अंजु दुआ जैमिनी तथा कविवर सुरंजन उपस्थित हुए। चूँकि नामवर सिंहजी अस्वस्थ थे तथा उनके गले से आवाज नहीं निकल रही थी। वे शीघ्र जाना चाहते थे। डॉ० नामवर सिंह ने जोरदार तालियों के बीच पुस्तक का विमोचन किया। विमोचनोपरांत उन्होंने सुरंजन को बधाई दी और कहा कि सुरंजन एक बहुत ही ईमानदार कवि हैं और मुझे उससे बेहद लगाव है। मैंने सुरंजन की कविताएँ पढ़ी हैं और कुछ देर के लिए भाव-विभोर भी हुआ हूँ। मेरा आशीर्वाद सुरंजन के साथ सदैव रहेगा। मैं ज्यादा बोलने की स्थिति में नहीं हूँ इसलिए क्षमा चाहता हूँ।

डॉ० गंगाप्रसाद विमल ने कहा कि सुरंजन की कविताओं में सामाजिक दर्द है। वह दर्द रचनाकार को दिखायी तो पड़ती है, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम भिन्न-भिन्न हो सकता है। सुरंजन ने इस दर्द को बड़े स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है।

'निवेदिता' का विवेकी राय विशेषांक

स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर में हिन्दी दिवस के अवसर पर महाविद्यालय की पत्रिका 'निवेदिता' के 'डॉ० विवेकी राय विशेषांक' का लोकार्पण करते हुए कबीर साहित्य के मर्मज्ञ प्रोफेसर शुकदेव सिंह ने कहा कि ऐसे समय में जब हम अपनी जड़ों से कटकर दूर होते जा रहे हैं, ऐसे में मिट्टी से जुड़े लोगों का सम्मान एक सुखद आश्चर्य है।

अपने सम्बोधन में लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार डॉ० विवेकी राय ने कहा कि हिन्दी भाषा पर संकट जरूर है, परन्तु संकट के दौर से जब-जब हिन्दी गुजरी है तब-तब और सशक्त होकर उभरी है। प्राचार्य डॉ० मान्धाता राय ने कहा कि निवेदिता 2005 के प्रकाशन की ही तरह आगामी अंक डॉक्टर राही मासूम रजा पर केन्द्रित करने की योजना है। साहित्यकार डॉ० जितेन्द्रनाथ पाठक ने कहा कि विवेकी राय ग्राम्य जीवन और संस्कृति के साथ अंतरंग सम्बन्ध बनाये रखने वाले हिन्दी के एकमात्र साहित्यकार हैं। हिन्दी के अतिरिक्त भोजपुरी में भी सच्ची कथा लिखनेवाला एक साधक तपस्वी रचनाकार श्री राय ने अपना पूरा जीवन लगा दिया। उनका जीवन उनकी रचना से अलग नहीं है। इस अवसर पर महाविद्यालय और जनपद की ओर से वरिष्ठ साहित्यकार डॉ० विवेकी राय को मान-पत्र तथा शाल से सम्मानित भी किया गया।

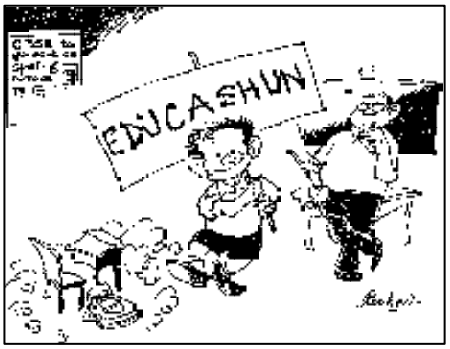

—'द हिन्दू' से साभार

हिन्दी भाषा से व्याकरण समाप्त हो रहा है, अब अंग्रेजी की बारी है। सीबीएसई ने अंग्रेजी छात्रों को अशुद्ध शब्द लिखने की छूट दे दी है। यह है स्वतंत्र भारत में शिक्षा का भविष्य। जिस देश की राष्ट्रभाषा नहीं उस देश में अंग्रेजी का स्थापक मैकाले हँस रहा है।

सम्मान-पुरस्कार

हिन्दी अकादमी, दिल्ली *द्वारा*

शिक्षक एवं सम्पादक सम्मानित

हिन्दी अकादमी, दिल्ली के उपाध्यक्ष डॉ० मुकुंद द्विवेदी ने राजधानी के इक्कीस शिक्षकों और तीन अव्यावसायिक पत्रिकाओं के सम्पादकों को सम्मानित किया।

इस सम्मान समारोह में **सुश्री सविता, श्रीमती अनुराधा मदान, श्रीमती सुनीता सिंह, श्रीमती मनमीत कौर, डॉ० राकेश सिंह, श्री महेन्द्र सिंह कैम, श्रीमती गुरमीत कौर, डॉ० नीलम, श्री देवीदत्त सजल, श्रीमती कल्पेश्वरी नौडियाल, श्री बलवान सिंह, श्रीमती संतरा दलाल, श्रीमती सुनीता भाटिया, डॉ० श्रीमती शकुन्तला त्रिपाठी, श्रीमती कौमुदी शर्मा, श्रीमती शकुन, श्रीमती शशिबाला हसीजा, श्री वेदपाल, श्रीमती संगीता नागर, डॉ० माधुरी, डॉ० प्रमोदकुमार** को सम्मानित किया गया। सम्मान स्वरूप प्रत्येक शिक्षक को 5100/-रु० की राशि, शॉल, प्रशस्ति-पत्र तथा विद्यालय के लिए 2100/-रु० मूल्य की साहित्यिक पुस्तकें प्रदान की गई।

अव्यावसायिक पत्रिकाओं के सम्पादकों में 'विमानिका' के सम्पादक **श्री यशवीर कुमार** को, 'पी०एन०बी० दीप स्तम्भ' की सम्पादक **सुश्री वीना पांडेय** को, 'दर्पण' के सम्पादक **श्री पी०डी० शर्मा** को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय पुरस्कार दिया गया। सम्मान स्वरूप क्रमशः प्रथम पुरस्कार 11000/-रु०, द्वितीय पुरस्कार 7000/-रु० और तृतीय पुरस्कार 5000/-रु० की राशि प्रशस्ति-पत्र तथा शॉल भेंट किये गए।

जॉन बैनविले को बुकर सम्मान

आयरलैंड में जन्मे जॉन बैनविले को उनके उपन्यास '**द सी**' के लिए प्रतिष्ठित बुकर पुरस्कार दिया गया है। इस उपन्यास को समीक्षकों ने त्रासदी और प्यार का सूक्ष्म चित्रण करने वाली रचना घोषित किया है।

59 वर्षीय बैनविले के उपन्यास को लेखन के इतिहास में मील का पत्थर माना। यह रचना साहित्यिक सौन्दर्य से भरपूर है। द आयरिश टाइम्स के पूर्व साहित्य सम्पादक बैनविले ने इस उपन्यास में त्रासदी और प्यार का जो चित्रण किया है, वह बेजोड़ है।

बैनविले ने पुरस्कार के तौर पर 88 हजार डॉलर यानी 55 हजार पौंड की राशि स्वीकार करते हुए कहा कि यह गजब इत्तफाक है कि दो बार मैं इस दौड़ में शामिल रहा और दोनों बार काजुओ मेरे प्रतियोगी रहे। इस बार मैं पुरस्कार जीतकर रोमांचित हूँ। वैसे उन्होंने यह भी कहा कि पुरस्कार की दौड़ में शामिल सभी पुस्तकें इसके योग्य थीं, लेकिन पुरस्कार तो किसी एक ही पुस्तक को मिलेगा।

ब्रिटिश नाटककार को साहित्य का नोबल

ब्रिटेन के मशहूर नाटककार हेराल्ड पिंटर को इस वर्ष के साहित्य के नोबल से सम्मानित किया जायेगा।

नोबेल पुरस्कार का चयन करने वाली रायल स्वीडिश एकेडमी ने 75 वर्षीय पिन्टर को साहित्य जगत के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार से सम्मानित करने की घोषणा करते हुए कहा कि उन्हें 12.8 लाख डालर दिये जायेंगे। '**द बर्थ डे पार्टी**' और '**द केयरटेकर**' पिन्टर के श्रेष्ठ नाटक माने जाते हैं। उन्होंने अपने नाटकों में मौन का इतना बेहतरीन इस्तेमाल किया है कि उनके नाम पर पिन्टरेस्क नाम वाली नाट्यलेखन शैली का ही आर्विभाव हो गया। रायल स्वीडिश एकेडमी ने पिन्टर के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा कि उन्होंने अपने नाटकों में रंगमंच के मूलभूत अवयवों को बरकरार रखा है जिसमें बन्द प्रेक्षागृह के भीतर बैठे दर्शकों के छद्म टूटकर बिखर जाते हैं और इस तरह वहाँ मौजूद हरेक व्यक्ति एक दूसरे की दया पर निर्भर हो जाता है।

डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र को मास्को में पुश्किन पुरस्कार

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि एवं साहित्यकार डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र को गत 6 अक्तूबर को मास्को स्थित अकादमिका पिलिगुना में आयोजित एक समारोह में पुश्किन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत मित्र समाज, मास्को के अध्यक्ष एवं रूसी भाषा के शीर्षस्थ कवि श्री अनातोली पारपरा ने डॉ० मिश्र को पुश्किन की विशिष्ट प्रतिमा भेंट करते हुए कहा कि रूसी साहित्य में कविता को गाने की परम्परा टूट गयी है। गेय कविता जनमानस में दीर्घकाल तक जीवित रहती है। डॉ० मिश्र की कविता के शब्द सुमधुर और काव्यपाठ आकर्षक है।

इस अवसर पर भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव (तकनीकी) श्री गोपालजी झा और मास्को विश्वविद्यालय की भारतीय भाषा साहित्य विभाग की अध्यक्ष डॉ० लुदमिला खोखलोवा और प्रवक्ता सुश्री तत्याना दुबियान्स्काया ने डॉ० मिश्र को स्मृति चिह्न भेंट कर सम्मानित किया। डॉ० मिश्र ने आभार व्यक्त करते हुए कहा कि रूस में भारत और भारतीयों के प्रति जो सहज मैत्री भाव है, उसे साहित्यिक आदान-प्रदान से ही सुदृढ़ किया जा सकता है।

जीवितराम को 'साहित्य गौरव रत्न'

सिन्धी-हिन्दी भाषा के वरिष्ठ साहित्यकार तथा 'प्रोत्साहन' के प्रधान सम्पादक जीवितराम सेतपाल को उनकी कृति 'तुम्हारे ही नाम' (यात्रा वर्णन) पर 'साहित्य गौरव रत्न' की उपाधि से उन्हें 'खानकाह सूफी दीदार चिश्ती' संस्थान द्वारा सम्मानित किया गया।

कथन

गाँधी के भारत की अनदेखी

इण्डिया ने पहले मजहब के नाम पर देश को बाँटा, अब भाषा के नाम पर उसे विभाजित कर रही है। इसने भारत को अपनी एक राष्ट्रभाषा नहीं बनाने दी। भाषाई दुश्मनी इतना बढ़ाई कि अंग्रेजी भाषा भारतीय भाषाओं के बीच दलाली करने आ गई। अंग्रेजी को ओढ़ना तो आजाद भारत ने मान लिया, लेकिन हिन्दी विकास को हकीकत की नजर से देखा। अंग्रेजी के शुभचिंतकों ने कहा, ''देश के किसी भी भाग पर कोई भी भाषा थोपी न जाए'' तो देश को चलाने वाले लोगों ने भी यही जप शुरू कर दिया। जो थोपी हुई भाषा है उसे इण्डिया ने मान लिया और जो भारत की अपनी भाषा है उसे थोपी हुई बता दिया। जब हिन्दी या कोई भी भारतीय भाषा किसी पर थोपी नहीं जाएगी तो फिर अंग्रेजी ही क्यों? उसे भारत पर क्यों थोप रखा गया है?

—भानुप्रताप शुक्ल

नया भाषा जगत

बड़े-बड़े एनजीओ अंग्रेजी में जन्मते हैं। लेकिन अपनी सार्थकता के लिए वे जब नीचे आते हैं तो 'हिंग्रेजी' में आते हैं या हिन्दी में आते हैं। आना पड़ता है। खुद को सार्थक करने के लिए आना पड़ता है। इसका एक उदाहरण पाकिस्तान में हिन्दी की पढ़ाई को लेकर की जा रही चिंता है। पाकिस्तान के 'एकेडेमिक जगत' में अचानक हिन्दी की पढ़ाई की, दीक्षा की जरूरत महसूस की जा रही है। यह एक बहुत बड़ी सांस्कृतिक 'शिफ्ट' है। बहुत से बड़े संस्थान, बड़े एनजीओ आदि अपनी कॉन्फ्रेंसों में हिन्दीवालों को भी बुलाने लगे हैं। वे हिन्दी में खबर बनने को मचलने लगे हैं। बहुत से अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी में आवाजाही करने लगे हैं।

यह एक नितांत नया भाषा जगत है, जहाँ संचार प्रमुख है, शुद्धता, व्याकरण सम्मतता का मामला पंडितजन जानें। जिसे बात करनी है, जिसे 'संचार' करना है, जिसे अपना सन्देश देकर कुछ 'मूल्य' बनाना है, उसे इस पांडित्य की जरूरत नहीं। और हिन्दी इसलिए सबसे बड़ी संचार भाषा बन चली है, क्योंकि उसमें सब भाषाओं के शब्द आसानी से 'क्रीड़ा' कर सकते हैं, मिक्स हो सकते हैं और जनस्वीकृति पा सकते हैं।

यदि इस हिन्दी में, सचमुच की बोलचाल की हिन्दी में कुछ लिखा जाएगा तो लोकप्रिय होगा।

—सुधीश पचौरी

जातीय विद्वेष का तात्विक कारण

भारतीय समाज में जो जातीय विद्वेष है उसका एक बड़ा कारण गुणवता प्रधान शिक्षा का अभाव है। लोगों को ऐसी शिक्षा नहीं मिल पा रही है जो उन्हें जिम्मेदार, राष्ट्रनिष्ठ और कर्त्तव्यपरायण नागरिक के रूप में विकसित कर सके।

—दैनिक जागरण

हमारे स्वर्णिम अतीत का अन्धकारमय भविष्य

हृदयनारायण दीक्षित

भारत सरकार ने कमाल कर दिखाया। सी०बी०एस०ई० के नए पाठ्यक्रम के अनुसार एन०सी०ई० आर०टी० की किताबों से राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत बाहर हो गये। सरकारी नीति नियंताओं की राय में राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत जैसे राष्ट्रीय प्रतीक बच्चों के बस्ते में भारी बोझ और भगवा जहर थे। एन०सी०ई०आर०टी० की 7वीं कक्षा की पाठ्य-पुस्तकों से 'राष्ट्रीय प्रतीक और पहचान' वाला अध्याय हटा दिया गया है। भविष्य का भारत (आज के बच्चे) राष्ट्र और राष्ट्रीय प्रतीकों से अपरिचित होगा। राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रसर्वोपरिता के आदर्श आगे किताबी ज्ञान भी नहीं होंगे। संप्रग सरकार वस्तुओं की ही तरह बच्चों की भी एक नई बहुराष्ट्रीयतावादी भूमण्डलीकृत पीढ़ी तैयार करने जा रही है। राष्ट्रगान, राष्ट्रगीत, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रीय पुष्प, राष्ट्रीय पक्षी जैसे स्वदेशी आग्रह बहुराष्ट्रवादी आर्थिक तंत्र की स्थापना में बाधक हैं। जाहिर है कि डॉ० मनमोहन सिंह के सपनों का भारत गांधी के सपनों के भारत से भिन्न है। भारत अब संप्रभु राष्ट्रराज्य के बजाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों / साम्राज्यवादियों /धर्मांतरण में जुटे ईसाई इस्लामी व्यापारियों के लिए हर तरह की बाधाओं से मुक्त सुविधामूलक भूखण्ड होना चाहिए।

भारत दरअसल जमीन का टुकड़ा नहीं है। भारत एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन है। अमेरिका, इंग्लैंड, रूस जर्मनी की तरह भारत का जन्म किसी प्रस्ताव या संविधान से नहीं हुआ। भारत अजन्मा है। भारत सिर्फ एक राज्य या देश ही नहीं है। देश दृश्यमान सत्ता है और राज्य विधिक सत्ता। लेकिन भारत देश और राज्य से परे एक गहन सांस्कृतिक सत्ता भी है। देश दिखाई पड़ता है, उसका प्रयोग ज्यादा होता है। राज्य शासन करता है, राजनीतिज्ञों को आकर्षित करता है। राष्ट्र उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। देश और राज्य की सत्ता ऊपरी है, राष्ट्र की सत्ता आन्तरिक और गहन है। बिल्कुल प्राण और देह जैसी। देह दिखाई पड़ती है, प्राण अदृश्य है। लेकिन प्राण ही देह के अस्तित्व का मूल है। इसी तरह देश और राज्यसत्ता देह है, राष्ट्रसत्ता प्राण। राष्ट्रगान / गीत इसी सत्ता की प्रार्थनामूलक काव्य अभिव्यक्ति है। राष्ट्रध्वज इसी सत्ता का स्वाभिमान प्रतीक है। राष्ट्रीय पुष्प कमल इसी सत्ता का नीराजन / पूजन भाव। राष्ट्रीय पक्षी मोर इसी सत्ता की चरम नृत्य अभिव्यक्ति। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया ''मैं आकाश में शब्द हूँ। वेदों में ओउम्। पुरुषों में पौरूष, पृथ्वी में सुगन्ध, जल में रस और अग्नि में चमक हूँ। लक्ष्य हूँ, स्वामी हूँ, साक्षी हूँ, शरण और मित्र हूँ।'' यहाँ 'मैं' परम सत्ता बोधक है। भारतीय राष्ट्र की सत्ता भी इसी तर्ज पर बोलती है ''मैं सनातन राष्ट्र हूँ। गीतों में वंदेमातरम् हूँ। मैं फूलों में कमल हूँ। मैं पक्षियों में मोर हूँ। झण्डों में मैं भगवाध्वज / चक्रयुक्त तिरंगा हूँ। विधानों में मैं भारत का संविधान हूँ। प्रतीक चिन्हों में मैं अशोक चक्र हूँ। समवेतगान में मैं जनगणमन हूँ। मैं भारत भाग्य विधाता हूँ। ऋग्वेद से लेकर उपनिषदकाल, पुराणकाल होते हुए आज तक गाया / रचा गया सारा लोकमंगल साहित्य मैं ही हूँ।'' परमसत्ता अदृश्य है, उसका व्यक्त रूप संसार है। राष्ट्रसत्ता अदृश्य है, उसका व्यक्त रूप राष्ट्रीय प्रतीक है।

भारत का राष्ट्रभाव हजारों वर्ष पुराना है। ऋग्वैदिक ऋषि धरती को माँ बताते हैं। वेदों में राष्ट्र शब्द की भरमार है। यजुर्वेद में 'आ राष्ट्रे राजन्य शूर' की कामना है। यहाँ 'राष्ट्र दा राष्ट्र में देहि' की प्रार्थनाएँ हैं। (अध्याय 10) लेकिन देवता भी जिस धरती के राष्ट्रगीत गाते रहे उसी धरती के शिशुओं को राष्ट्रगान के परिचय से भी दूर रखा जा रहा है। यूरोपीय राष्ट्रवाद बमुश्किल चार सौ वर्ष पुराना है। इसके पूर्व पोप का पवित्र राज्य था। इंग्लैंड के 8वें हेनरी के समय पोप और स्पैनिश आर्मडा के विरुद्ध इंग्लैंड में स्वराज की माँग उठी। नेपौलियन के हमलों से जर्मनों में गुस्सा बढ़ा। आस्ट्रियाई साम्राज्यवादी हमलों के कारण बिखरे इटली में भी यही भाव जगा। यूरोप का राष्ट्रवाद प्राचीन भारतीय राष्ट्रवाद जैसा न होकर क्षेत्रवाद था। कार्लमार्क्स भी राष्ट्रवाद विरोधी थे। 1870 ई० तक जर्मनी भी कोई देश नहीं था। यह नार्डिक ट्यूटन जातियों का समूह था। जर्मन रोमन राज्य के अधीन थे। जर्मन राष्ट्रवाद के जन्मदाता जे०सी० हरडर ने 'आइडियाज ऑन फिलास्फी ऑफ मैनकाइंड' (1748 ई०) किताब लिखी। हरडर के मुताबिक प्रत्येक सच्ची सभ्यता की एक आत्मा होती है। यह स्थानीय मूल से विकसित होती है। यही राष्ट्रीय प्रकृति होती है। हरडर ने इसका नाम 'वोल्कजिस्ट' बताया। हरडर की राष्ट्रीय आत्मा / वोल्कजिस्ट का प्रचार ही जर्मनी का नवजागरण (सन् 1800 ई०) था। जोहान फिख्टे ने 'ऐड्रेशेज टु नेशन' में जर्मनी की आत्मा का सिद्धान्त चलाया। संविधान और कानून के बजाय राष्ट्रीय आत्मा को सर्वोपरि बताया। हीगल ने इसे मौलिक विचार देकर समृद्ध बनाया। इतिहासकार एल०एफ० रैन्के (1795-1886) ने तद्नुरूप इतिहास लेखन का अभियान चलाया। इसी प्रवाह में राइन महासंघ (1806) बना। 38 राज्यों ने जर्मन महासंघ बनाया।

भारत राज्यों / क्षेत्रों के महासंघ से नहीं बना। यह सदा से था। राजा और राज्य व्यवस्थाएँ बदलती रही। राष्ट्रभाव घटा तो विदेशी सत्ता, राष्ट्रभाव जगा तो स्वदेशी राज्य व्यवस्था। इस्लामी अंग्रेजी हुकूमतें इसी राष्ट्रभाव को मार देना चाहती थीं। लेकिन राष्ट्र की जिजीविषा के सामने हार गयीं। राष्ट्र राजशक्ति से नहीं चलते। डॉ० अम्बेडकर ने लिखा ''एक केन्द्रीय सत्ता (अंग्रेजी) के अधीन 150 वर्ष तक रहने का समय भी पर्याप्त नहीं है तो अनंतकाल तक एकीकरण नहीं होगा। यह सही है कि भारतवासी आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। परन्तु इन झगड़ों से उस एकता का नाश नहीं हो सकता, जो प्रकृति के समान सनातन है। संक्षेप में यह एकता आध्यात्मिक होनी चाहिए। ''(डॉ० अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड 15) इसके पहले बंकिमचन्द्र 'आनन्दमठ' में वंदेमातरम् लिख चुके थे। वंदेमातरम् राष्ट्र धमनियों का रक्तस्पंदन बन चुका था। कांग्रेस के अधिवेशन (1896) में गाया भी जा चुका था। वंदेमातरम् भारत का स्वाभाविक राष्ट्रगान / गीत है। लेकिन कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (1911 ई०) में दूसरे दिन आए ब्रिटिश महाराजा जार्ज पंचम के स्वागत में गाया गया 'जनगण मन अधिनायक जय हे' संविधान सभा (24.1.1950) द्वारा भारत का राष्ट्रगान घोषित कर दिया गया। कलकत्ता अधिवेशन के प्रथम दिन की कार्यवाही वंदेमातरम् से शुरू हुई। तीसरे दिन सरला देवी के गाए 'नमो हिन्दुस्तान' से समाप्त हुई। दूसरे दिन के मुख्य अतिथि जार्ज पंचम के स्वागत के लिए कांग्रेस ने रवीन्द्रनाथ टैगोर से गीत लिखने का आग्रह किया। रवीन्द्र बाबू ने जनगणमन लिखा, गाया। एक अखबार / स्टेट्समैन (18.12.1911) में छपा ''बंगाली कवि बाबू रवीन्द्रनाथ टैगोर ने महाराजा के स्वागत में अपना लिखा गीत गाया''। एक अन्य अखबार / इण्डियन (29.12.1911) ने लिखा ''महाराजा के स्वागत में बंगाली गीत गाया गया। स्वागत का निर्विरोध प्रस्ताव भी पारित हुआ।'' राज-आराधन और राष्ट्र-आराधन एक हो गये। तब वंदेमातरम् के गायन पर कोड़े चलते थे। जनगणमन के गायन का स्वागत ब्रिटिश सरकार भी करती थी। अंग्रेज जनगणमन के प्रशंसक थे और वंदेमातरम् के दुश्मन।

भारत की संविधान सभा भी वंदेमातरम् को अव्वल दर्जा नहीं दे पायी। वंदेमातरम् में राष्ट्र जीवमान है, भारत माता, सुजला सुफला, शुभ्रज्योत्सना, फुल्लकुसमित, पुलकितयामिनी है और सुमधुरभाषनी। सेकुलरपंथियों ने सुमधुर-भाषिनी भारत माता को जीवमान मूर्ति मानने से इन्कार किया। जार्ज पंचम की स्तुति को राष्ट्रस्तुति / राष्ट्रगान का दर्जा मिला। वंदेमातरम् को राष्ट्रगीत का। ऐसा ही भगवद्ध्वज के साथ भी हुआ। भगवद्ध्वज रामकथा में हनुमान के हाथ था, महाभारत में कृष्ण-अर्जुन के रथ पर था, छत्रपति शिवा और राणाप्रताप की आन बान शान था, वही

सेकुलर मार्गी दृष्टि का शिकार हुआ। भारत ने दोनों संशोधन पूरे मन से स्वीकार किये। राष्ट्रगान आन्तरिक अनुशासन बना, राष्ट्रगीत देश का स्पंदन बना। तिरंगा स्वाभिमान बना। लेकिन इन्हें भी बच्चों से छुपाना और वयस्कों के लिए आरक्षित करना विस्मयकारी है। आखिरकार ये लोग कैसा भारत चाहते हैं? क्या राष्ट्रभावविहीन भारत? या राष्ट्रभाव से उफनाता उमंग मारता, अतीत की ऊर्जा और वर्तमान में कर्म से भविष्य संवारता भारत। परिपूर्ण राष्ट्रवादी भारत या परिपूर्ण बहुराष्ट्रवादी भारत?

आपका पत्र

दिल्ली, 15 अक्टूबर 05

प्रिय भाई,

आपका सम्पादकीय मातृभाषा-राष्ट्रभाषा देखा। हिन्दी को सरकारी भाषा बनाने का मतलब राष्ट्रभाषा नहीं है, राजभाषा है। राष्ट्रभाषाएँ तो सभी हैं और हिन्दी भी राजभाषा तो है ही। डॉ० राममनोहर लोहिया कहा करते थे कि ''हिन्दी तो इस देश की राजभाषा है ही और रहेगी भी। इस भाषा का सम्बन्ध देश की राजधानी से है। राजा तो राजधानी में रहता है जो उससे मिलने आएगा वह राजभाषा सीखकर ही आएगा क्योंकि उसे राजा से मिलना है। भारत की राजधानी हमेशा से हिन्दी प्रदेश में रही। पटना, फ़तेहपुर सीकरी, आगरा और दिल्ली सब हिन्दी-भाषी प्रान्त हैं।''

जो भी विदेशी यात्री यहाँ आए, दरबार तक पहुँचे, सब ने हिन्दी सीखी।

आज के राजनेता ने इस साधारण से प्रश्न को जटिल बना दिया। आपने अपने सम्पादकीय में जो लिखा है, ''जब तक देश की अन्य भाषाओं के प्रति लोक आस्था नहीं बनेगी; तब तक हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकेगी।'' राजभाषा तो वह है ही।

एक और बात है आप तमिल प्रदेश में जाइए वहाँ सब हिन्दी जानते हैं, जिनको जनना जरूरी है वे सब हिन्दी जानते हैं। रामेश्वरम हिन्दी द्वीप कहलाता है। वह हिन्दुओं का बहुत बड़ा तीर्थ है सारे देश के हिन्दू वहाँ जाते हैं वहाँ सब हिन्दी में बात करते हैं। रिक्शेवालों से लेकर दूकानदार और बाज़ार वाले हिन्दी जानते हैं। जब मैं अपनी पत्नी के साथ दक्षिण घूम रहा था। वे तो हिन्दी ही जानती थीं, हर घर में चली जाती थीं और महिलाओं से हिन्दी में बात करती थीं। मैं अगर अपने अनुभव लिखूँ तो पूरी एक किताब हो जाए। यह तो हमारे नेताओं से सब कुछ गड्डमड्ड कर दिया। बंगाल ने हिन्दी-प्रचार के लिए कितना काम किया। बिहार की मातृभाषा हिन्दी है, यह आन्दोलन एक बंगाली ने चलाया था। देवनागरी लिपि का प्रचार भी एक बंगाली ने शुरू किया। ब्रह्म-समाज के नेताओं ने 'स्वामी दयानन्द' को हिन्दी पढ़ने की सलाह दी थी। हिन्दीभाषी लोग तो आज भी अंग्रेज़ी में बात करते हैं। सो भाई आवश्यकता आत्ममंथन की है। हम जितनी भाषाएँ सीख सकें उतना ही अच्छा है। हम उनकी भाषा पढ़ें तभी वे हिन्दी बोलेंगे यह नियम नहीं चल सकता। हाँ, एक व्यक्ति अधिक-से-अधिक भाषाएँ जाने यह नियम चल सकता है। बांग्ला तो बहुत से हिन्दी-भाषी जानते हैं और भी भाषाएँ जानते हैं लेकिन दक्षिण की नहीं जानते। यह सही है कि हमें दक्षिण की कोई-न-कोई भाषा सीखनी चाहिए। तो भाई यह प्रश्न बड़ा जटिल हो गया है। इसको सुलझाने के लिए कुछ-न-कुछ बलिदान करना ही पड़ेगा। इसलिए फिर सोचिए और कोई रास्ता ढूँढ़िए। वह रास्ता दूर नहीं, आवश्यकता दृष्टि की है, विचार की है।

—विष्णु प्रभाकर, दिल्ली

अक्तूबर 2005 का 'भारतीय वाङ्मय' पाकर कृतार्थ हुआ। आपके सम्पादकीय आलेख विचार प्रधान होते हुए आतिशी होते हैं। क्यों न चुन कर उनका एक संग्रह छाप दें। उनमें इमारती सवाल हैं, उनके समाधान भी हैं। **—डॉ० राय आनन्दकृष्ण**
वाराणसी

पुस्तकों के प्रचार-प्रसार को समर्पित यह पत्रिका अच्छी लगती है। बहुत सारी सूचनाएँ भी इससे मिल जाती हैं। इसके नियमित प्रकाशन के सत्कार्य के लिए बधाई। **—सिद्धनाथ कुमार**
राँची

'भारतीय वाङ्मय' ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। छोटी-सी बुकलेट बड़ी और महत्त्वपूर्ण सूचनाओं के कारण संग्राह्य हो गई है। बधाई! **—डॉ० कमल गुप्त**
सम्पादक, कहानीकार, वाराणसी

भारतेन्दु कभी राजमहल नहीं गये

मैंने भागलपुर की साहित्यिक संस्था 'कामायनी' की ओर से जारी विज्ञप्ति तथा 'हिन्दी वाङ्मय' के अक्टूबर 05 के अंक में 'भारतेन्दु साहित्य पर अंग जनपद के जीवन का प्रभाव' गोष्ठी की प्रकाशित रिपोर्ट पढ़ी। रिपोर्ट पढ़ने के बाद ऐसा लगा कि गोष्ठी में भारतेन्दु के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचार मनगढ़न्त हैं क्योंकि विचारों की पुष्टि के लिए कोई प्रमाण नहीं प्रस्तुत किये गये। मैं चाहूँगा कि कथाकार शिवकुमारजी और आलोचक अमरेन्द्रजी अपने विचारों के तथ्यों के सन्दर्भों की जानकारी दें।

वैसे शिवकुमारजी का यह कथन कि ''भारतेन्दुजी के सम्पूर्ण जीवन का आधा हिस्सा (याने 17 वर्ष) अंग जनपद के संथाल परगना के एक हिस्से में बीता था। वह हिस्सा उनकी जन्मभूमि ही नहीं साहित्य की कर्मभूमि रहा है।''

उपर्युक्त सन्दर्भ में मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी का प्रारम्भिक जीवन काशी में पढ़ाई-लिखाई में बीता। वे काशी से बाहर कहीं नहीं गये। शेष 17 वर्ष साहित्य में बीता और इस बीच उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा की किन्तु राजमहल नहीं गये। राजमहल में भारतेन्दु के पूर्वजों अमीचंद की कोठी थी। पर भारतेन्दु परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं था। अत: उनके अंगिका जीवन के बारे में सोचना मात्र मानसिक आयाम ही कहा जायगा।

भारतेन्दुजी के पिता का विवाह बनारस के शिवाला मुहल्ले में हुआ था। उनका दूसरा विवाह भी काशी में ही हुआ था। अत: राजमहल को उनकी जन्मभूमि कहा जाना यानि साहित्य के इतिहास को धोखा देना ही कहा जायगा। उनका सारा साहित्य काशी में लिखा गया।

उन्होंने किशोरावस्था में सबसे पहले जगन्नाथपुरी की यात्रा की थी और अन्तिम यात्रा 1884 के नवम्बर में बलिया की की थी, जो ऐतिहासिक थी। इन अवधियों के बीच पटना, डुमराँव, कलकत्ता, गोरखपुर, बस्ती और अनेक स्थानों की भी यात्रा की थी। पर उन्होंने राजमहल की यात्रा नहीं की थी।

अमरेन्द्रजी का भी यह कथन कि—''भारतेन्दु ने अपने जीवन के 15-20 साल अंग जनपद के राजमहल में बिताया था। उस समय उनकी भाषा मातृभाषा सिर्फ अंगिका ही रही होगी। वे पिता की मृत्यु के बाद बनारस गये।''

उपर्युक्त वक्तव्य भी सर्वथा निराधार है। उनकी कुल आयु 34 वर्ष और कुछ महीने थी। उन्होंने 17 वर्ष की उम्र में साहित्य लेखन आरम्भ किया और अन्तिम रचना भारतवर्ष की उन्नति कैसे होगी तक वे साहित्य लेखन में व्यस्त थे। अत: राजमहल जाने का प्रश्न बिल्कुल व्यर्थ की बात है।

ऐसे गम्भीर विषय पर कुछ कहने के लिए पहले उन्हें जिम्मेदारीपूर्ण तरीको से सोचना चाहिये। इस तरह के वक्तव्य से हिन्दी की छवि बिगड़ती है। **—डॉ० धीरेन्द्रनाथ सिंह,** वाराणसी

आपका 'न्यूज बुलेटिन' नियमित और सार्थक है, इसमें आपके विचार किसी भी हिन्दीप्रेमी को प्रेरित और अभिभूत करते हैं, मैं उनका प्रशंसक हूँ।

—राष्ट्रबन्धु, कानपुर

नवशती हिंदी व्याकरण

बदरीनाथ कपूर

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली

मूल्य : 95.00

आचार्य रामचंद्र तिवारी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल को गद्यकाल की संज्ञा दी थी पर वे अपने जीवनकाल में गद्य का मूल्यांकन कार्य समग्र रूप से नहीं कर पाए। क्या संयोग कि उनके इस कार्य को उन्हीं के नामराशि आचार्य रामचंद्र तिवारी ने अपनी पुस्तक '*हिन्दी का गद्य साहित्य*' लिखकर किया, जिसके अब तक चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य शुक्ल के प्रति अत्यन्त आस्थावान होते हुए तथा उन पर अब तक पाँच पुस्तकें लिख चुके तिवारीजी यह कहने में संकोच नहीं करते कि ''अब तक ठीक-ठीक उन्हें मैं समझ नहीं पाया हूँ।'' यही विनम्रता शायद इस दिग्गज की सबसे बड़ी धरोहर है। गत वर्ष जब उनके 81वें जन्मदिन के मौके पर आयोजित समारोह में देश के विविध हिस्सों से आए उनके शिष्य जुटे तो उन्होंने कहा, ''मैंने जाने-अनजाने किसी को दुखाया हो तो मुझे माफ कर दें और प्रार्थना करें कि बाकी जीवन में भी ईमानदारी के पथ से न डिगूँ।'' उनके शिष्यों में एक, कोलकाता विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० अमरनाथ कहते हैं, ''उनमें कबीर की दृढ़ता है तो आचार्य शुक्ल का स्वाभिमान, दायित्व के प्रति कभी समझौता न करने वाले महावीरप्रसाद द्विवेदी की संकल्पशक्ति है तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की मानवीय उदारता।''

कोई पचपन वर्ष से भी अधिक का उनका जीवन अध्ययन-अध्यापन, और आलोचना कर्म को समर्पित रहा है। लेकिन वे साहित्य की विभक्त दुनिया से ऊपर रहे हैं। उनका लेखन साफ, बेलाग और हर स्तर के पाठक को संतृप्त करने वाला है। उनके एक और शिष्य कवि वेद प्रकाश पाण्डेय कहते हैं, ''वे किसी लेखक संघ के सदस्य नहीं बने। किसी लेखक-आलोचक के प्रचारक नहीं हुए। न देश भर की गोष्ठियों में अपना झण्डा फहराते दिखे, न दूसरों का झण्डा ढोते दिखे।'' उपन्यासकार रामदेव शुक्ल कहते हैं, ''वे ऐसे द्रोणाचार्य हैं, जिन्होंने राजघरानों की उपेक्षा की और एकलव्यों को स्नेह दिया।''

शायद इसीलिए 82 वर्ष की आयु और बीमारियों के नियमित हमलों के बावजूद वे युवाओं से ज्यादा सक्रिय हैं। जिज्ञासु छात्रों, शिक्षकों, लेखकों और सक्रिय संवाद मंचों के लिए एक विलक्षण विमर्शकार के रूप में वे सहज भाव से उपलब्ध हैं और संत साहित्य से लेकर नव्यतम गद्य साहित्य तक के विषयों पर समान अधिकार रखते हैं। *मध्ययुगीन काव्य साधना, कबीर मीमांसा, आलोचक का दायित्व, कथा राम कै गूढ़, हिन्दी का गद्य साहित्य* सरीखे योगदानों के लिए वे उ०प्र० हिन्दी संस्थान, भारतीय हिन्दी परिषद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित किए जा चुके हैं। उनकी उपस्थिति ही अनेक लोगों के लिए आश्वस्तिकारी है।

—कुमार हर्ष, 'इण्डिया टुडे' से

डर हमारी जेबों में

गत दिनों इंगलैंड की साहित्यिक संस्था कथा (यू०के०) ने नेहरू सेंटर, लन्दन में **प्रमोदकुमार तिवारी** को उनके उपन्यास 'डर हमारी जेबों में' के लिए उन्हें वर्ष 2005 का '**अन्तर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान**' प्रदान किया। यह सम्मान नेहरू केन्द्र, लन्दन के निदेशक श्री पवनकुमार वर्मा के हाथों उन्हें प्राप्त हुआ।

पुरस्कार समारोह की अध्यक्षता भारतीय हाई कमीशन, लन्दन के समन्वय मंत्री श्री रजत बागची ने की तथा धन्यवाद ज्ञापन सूरज प्रकाश ने। इस आयोजन का सफल संचालन पद्मेश गुप्त ने किया।

परिश्रम पहले, प्रारब्ध उसके बाद

—विश्वनाथ
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

जीवन में जो भी कुछ घटित होता है उसमें कर्त्ता होने के नाते हम अपने विवेक और बुद्धि से अपनी सामर्थ्य के आधार पर निर्णय लेते हैं। परन्तु अपने किए-कराए से ही सब कुछ नहीं होता। जो भी फल प्राप्त होता है, उसमें कहीं न कहीं दूसरों, मित्रों का, चिंतकों का भी योगदान होता है। आप यह भी कह सकते हैं कि पुरुषार्थ और प्रारब्ध दोनों से ही कर्मों का फल निर्धारित होता है। प्रारब्ध कितना, पुरुषार्थ कितना, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। मेरी यह मान्यता है और अनुभव भी, कि परिश्रम का श्रेय अधिक है, प्रारब्ध उसके बाद।

गीता में जो यह बात कही है कि मनुष्य के हाथ में कर्म करना है। उसका फल कैसा होगा, कितना होगा यह कहना कठिन है और अपने मन के अनुसार फल की आकांक्षा भी नहीं रखनी चाहिए। मैं इस तथ्य को पूरे मन से स्वीकार करता हूँ। अंग्रेजी में कहावत है 'डू द बेस्ट एंड लीव द रेस्ट'। मेरा यह विश्वास है कि अच्छे कर्म करेंगे तो अच्छा फल मिलेगा ही।

मैं प्राय: कहता हूँ कि इसी जीवन में मैंने दो बार जन्म लिया है। पहला जन्म 1920 में लाहौर में हुआ और दूसरा जन्म अगस्त 1947 में दिल्ली में, जब पाकिस्तान बनने के बाद घर-बार, धन-सम्पत्ति, लाखों का व्यापार और पुस्तकों का स्टाक, सब कुछ वहीं छोड़कर बिल्कुल खाली हाथ आना पड़ा, विस्थापित के रूप में। इसे आप ईश्वर की विशेष कृपा कहें या अपना दिन-रात का कड़ा परिश्रम कि नए सिरे से प्रकाशन व्यवसाय स्थापित हो सका, श्रेष्ठ लेखकों का भरपूर सहयोग मिला, प्रकाशन में नए आयाम स्थापित हो पाए और एक बार फिर से जीवन को पहले के समान दृढ़ आधार और यथेष्ट सफलता मिली।

संस्कृत के ज्ञान और संस्कार से मुझे जीवन में आध्यात्मिक रूप से एक सार्थक सम्बल मिला। साहित्य के प्रति गहरा लगाव भी और अपनी संस्कृति को समझने का साधन भी मिला। हमारी सारी आध्यात्मिक, वैचारिक, सांस्कृतिक विरासत संस्कृत में ही निहित है। उपनिषद् और गीता मेरे विशेष प्रिय विषय हैं जिन्हें प्रत्येक बार पढ़ने पर जीवन दर्शन के नए आयाम प्रकट होते हैं।

मैं प्रात: 3 से 4 बजे के बीच उठता हूँ और ढाई-तीन घण्टे पढ़ने-लिखने का काम करता हूँ। फिर उसके बाद 45 मिनट सैर-व्यायाम आदि करता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि 24 घण्टों में से सबसे मूल्यवान समय सूर्योदय से पहले का 3-4 घण्टा होता है, जब आप बिना किसी व्यवधान के, शांत-एकान्त वातावरण में प्रकृति के साथ एकात्म होते हैं और यही समय है जब आप ईश्वर के विराट रूप को अनुभव कर पाते हैं और ध्यान-चिंतन भी।

मैं अपने आप को सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मेरा जीवन पुस्तक-संसार में, साहित्यकारों के मध्य, श्रेष्ठ साहित्य के अनुशीलन और प्रकाशन में गुजरा।

'...जब राष्ट्र में होती है व्यवस्था दुनिया में रहता है अमन'

जहाँ नेकी है दिलों में
वहाँ चरित्र में है सुन्दरता।
जहाँ चरित्र है सुन्दर
वहाँ घरों में है
मेलजोल और मोहब्बत।
जहाँ घरों में है मोहब्बत
वहाँ राष्ट्र में होती है
सुशासन और व्यवस्था।
जहाँ राष्ट्र में होती है व्यवस्था
दुनिया में रहता है अमन।

—राष्ट्रपति ए०पी०जे० अब्दुल कलाम

पत्ती, फूल, किताबें, धूप
तितली, बच्चे, धूल, हँसी
ये थोड़े सामान बचा लो;
शायद दुनिया बच जायेगी!

—सुधांशु उपाध्याय

पुस्तकें सबकी पथ-प्रदर्शक

विवेकी राय

विश्वविद्यालयों से निकलने वाले युवक आज किसानी करना शरम की बात समझते हैं। वे 'बाबूगिरी' के चक्कर में रात-दिन अमीरी का सपना देखते हैं। ऐसी दशा में देश की यह बे-पतवार नैया न जाने किस किनारे लगेगी? एक प्रश्न है। इस प्रश्न के पेट में घुसेंगे तो दो चीजें पाएँगे। एक तो गरीबी और दूसरा आलस। गरीबी के कारण पढ़ा-लिखा नौजवान चाहे जैसे हो जल्दी अधिक धन कमाने की टोह में रहता है और आलस के मारे वह ऐसा व्यवसाय चाहता है जो कुर्सी पर बैठे-बैठे हस्ताक्षर करने अथवा हुक्म देने जैसा हो। वह इतने संकुचित विचार-क्षेत्र में भ्रमित रहता है कि उसे कुछ दूसरा सूझता ही नहीं है। उसकी आँखें बन्द रहती हैं। कहा जाता है कि आदमी की आँखें शास्त्र हैं। शास्त्र माने पुस्तक। तो आज हम देखते हैं कि पढ़-लिखकर जहाँ नौकरी की देहली आई, अध्ययन बन्द हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आँखें बन्द हो जाती हैं। अरे भाई, पढ़ोगे नहीं तो दुनिया की गति से अपरिचित, विश्व की बदलती राहों से अनजान रहोगे और स्वार्थ के अँधेरे में केवल ठोकरें खाते रहोगे। क्या यही मंजर है?

यह संसार एक खुली पाठशाला है। धरती पुस्तक है। इसके पन्ने सन्ध्या-प्रात: के रूप में अनियंत्रित गति से नित्य उलटते चले जा रहे हैं। उन्हें हम ध्यानपूर्वक पढ़ें। समय की गति पहचानें। यदि इतनी योग्यता नहीं है तो हम उन मनीषियों के लेख पढ़ें जिन्होंने अपना समस्त जीवन इन्हीं प्राकृतिक पन्नों को पढ़ने की साधना में खपा दिया और हमें अनुभव का भण्डार सुलभ करा गए।

यदि ये व्यवस्था से चलने वाले विद्यालय हमें पदच्युत ही अधिक कर पाए तो हम स्वावलम्बन का सहारा क्यों न लें। इससे अपने निर्धारित उद्देश्य की दिशा में जा तो सकेंगे। पुस्तकावलोकन अवश्य ही प्रत्येक प्रकार से कल्याणकर सिद्ध होगा। कोई चलकर तो देखे इस पथ पर! चुने हुए विषय की चुनी हुई दस पुस्तकें कितनी जानकारी दे गईं इसे वह क्या जानेगा जिसने उन अच्छी पुस्तकों का नाम भी नहीं जाना!

हम जो कुछ अध्ययन करते हैं कई दिशाओं में फलीभूत होना है। राष्ट्रीय भलाई के रूप में भी यह विशेष प्रभाव छोड़ता है। विचारों से ही व्यक्ति बनता है, देश-जाति के निर्माण में मानव की इकाई का ही महत्त्व है। जब वह अध्ययन करने बैठता है तो लेखक के विचारों की छाप उस पर पड़ती है। कालान्तर में वही विचार उसके अपने होकर शुभ प्रभाव छोड़ते हैं। किसी पुस्तक को पढ़कर किसी व्यक्ति के मन में उच्च विचारों की लहरें उठने लगीं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि राष्ट्र के मानस में अथवा विश्व-सागर में उन्नत चिन्तन की तरंगें उठ रही हैं।

गाँवों के के साधारण पढ़े-लिखे लोगों के लिए पुस्तकाध्ययन एक महौषधि है। उनके जर्जर जीवन में रस-संचार करने के लिए इससे और अधिक उपयोगी साधन कोई नहीं है। जब पढ़ने पर नौकरी नहीं मिलती तो लोग भाग्य-दोष के साथ पढ़ने-लिखने की व्यर्थता के प्रचारक हो जाते हैं। यदि ऐसे हतोत्साह लोग अध्ययन की कुछ दिन नौकरी करें तो उनकी काया पलट जाएगी। क्या ही आश्चर्य और खेदकी बात है कि एक साधारण समझ रखने वाला व्यक्ति पढ़ने का अर्थ समझता है नौकरी करना। अपनी शिक्षा को वह एक नौकरी की माला समझता है जिसे नौकरी न मिलने पर उतार कर खूँटी पर टाँग देता है। उसे व्यवहार में लाने और आचरण में उतारने में वह पूर्ण असमर्थ होता है। पढ़ते समय उसका प्राण जीवन-निर्माण में नहीं, पास-फेल की कच्ची टहनी पर अटका रहता है। गिरता है तो चूर-चूर हो जाता है। इतिहास-भूगोल-साहित्य-नागरिक शास्त्र और अन्यान्य विषयों को अथवा उनकी जानकारी को शिक्षा का साध्य वह मान लेता है, जीवन की जानकारी का साधन नहीं मानता। यही कारण है कि स्कूल छोड़ने के बाद पुस्तकों से नाता छूट जाता है। सच बात तो यह है कि वास्तविक पुस्तक-पठन का प्रारम्भ तो तब होना चाहिए जब व्यक्ति स्कूल छोड़कर कारोबार में आ जाता है। स्कूल में तो उसे पढ़ने और समझने का अभ्यास कराया जाता है। उससे लाभ उठाने का जब अवसर आता है तो वह पुस्तकों से नाता तोड़ लेता है। क्या दुर्भाग्य है!

साधन की महत्ता है कि वह साधक को साध्य की कुटी तक पहुँचा दे। अक्षर-ज्ञान वाला मनुष्य साधक है। पुस्तकें उसकी साध्य नहीं हैं। वे साधन हैं। अपने को और अपने कर्तव्यादि को ठीक-ठीक पहचान लेना और आचरण में उतारना ही साध्य है। यह सत्य का अन्वेषण करना और अपने व्यवहार में लाना है। प्राचीन काल में यह कार्य गुरुओं की सहायता से होता था। वे देवतुल्य होते थे। उनके एक लघु इंगित से ही अन्तर की आँखें खुल जाती थीं। आज वे नहीं हैं, परन्तु उनके विचारों-भावों और उपदेशों की अमर चित्रावली तो है। पुस्तकों में युग-युग का सुसंचित उनका मानस-वैभव तो है! बाहर की दुनिया में गुरु खोच कर हारे हुए निराश मानवों के लिए पुस्तकों की दुनिया एक प्यार-भरा आह्वान है। अनन्त जिज्ञासा और अनन्त समाधान तथा अननत प्रश्न और अनन्त उत्तर एक ओर विशाल समुद्र की भाँति धरती पर हिलकोरे ले रहे हैं और दूसरी ओर ज्ञान का प्यासा आदमी जंगल में मारा-मारा फिरता है।

कुछ सोचें। अपनी माँ, अपना घर, अपना खेत, अपना गाँव, अपना देश और सम्पूर्ण विश्व। इस प्रकार हमारी ज्ञान की परिधि बढ़ती है। जब साधारण ज्ञान की सीमा हम पार करते हैं तो अनायास एक विशाल ज्ञान और अनुभव की पिटारी हमको मिल जाती है और एकदम हम उसके आगे विचार करने लगते हैं अथवा जानने लगते हैं वहाँ तक, जहाँ तक हमारे पूर्वज जान चुके हैं। यह ज्ञान की पिटारी हमको कहाँ से मिलती है? किसी कृपा से हमारा संकुचित ज्ञान बढ़कर लोकोत्तर हो जाता है? पुस्तकों की। उत्तर स्पष्ट है।

कुछ और गहराई में उतरें। पुस्तकें हमें इस दुनिया से बहुत दूर, ऊँचाई पर पहुँचा देती हैं। जितनी देर तक हम उन्हें मनोयोग से पढ़ते रहते हैं, कहाँ रहते हैं? इस दुनिया में? जी नहीं। हमारी असली दुनिया यह नहीं है। यह तो तुलसी के शब्दों में, 'धुएँ का धरोहर है।' पुस्तकें भावनामय हाथों से मलकर हमारी आँखें खोल देती हैं और कहती हैं—"भोले, देखो अपना जगत्! तू कहाँ भटक रहा था!! तुम्हारी हर बात का पता मेरे पास है!!"

स्मृति शेष

डॉ० भोलाशंकर व्यास

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष भाषाविद् प्रोफेसर भोलाशंकर व्यास का रविवार 23 अक्टूबर 2005 को सायंकाल 7 बजे उनके लंका स्थित निवास पर निधन हो गया। वे लगभग डेढ़ वर्ष से अस्वस्थ थे।

19 अक्टूबर 1923 को बूँदी (राजस्थान) में जन्मे व्यासजी 1953 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। 1961 में रीडर और 1973 में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुए। 1983 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में तीन वर्षों तक सेवा की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उन्हें मानद एमरेट्स प्रोफेसर से सम्मानित किया गया। वे हिन्दी से सम्बन्धित अनेक राजकीय तथा सार्वजनिक संस्थानों के नामित सदस्य रहे और सम्मानित किये गये। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—हिन्दी दशरूपक, संकृत कवि दर्शन, ध्वनि सम्प्रदाय तथा उसके सिद्धान्त, संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन (विश्वविद्यालय प्रकाशन द्वारा प्रकाशित)। हिन्दी शब्द सागर, हिन्दी विश्व साहित्य कोश (खण्ड एक), संस्कृत वाङ्मय का वृहत इतिहास (तीसरा खण्ड) का सम्पादन किया। 'समुद्र संगम' आपका लोकप्रिय उपन्यास है।

प्रो० भोलाशंकर व्यास के निधन से काशी में शास्त्रीय परम्परा के हिन्दी विद्वान् का स्थान रिक्त हो गया, यह अपूरणीय क्षति है।

पुस्तक समीक्षा

आलोचक का दायित्व

रामचन्द्र तिवारी

द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण : 2005

Paperback ISBN : 81-7124-409-2

Hard Bound ISBN : 81-7124-446-7

विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

मूल्य : अजिल्द 150.00 सजिल्द : 250.00

आधुनिक साहित्य के सन्दर्भ में आलोचक का दायित्व का निर्धारण एक अत्यन्त विवादास्पद एवं जटिल प्रश्न है। कृति के सामान्य गुण-दोष, कथन से लेकर उसकी आशंसा, व्याख्या, मूल्यांकन, महत्त्व-प्रतिपादन, वस्तुरूप-विश्लेषण, सौन्दर्य-निदर्शन, संवेद्य तत्त्व-विवेचन तथा प्रभावाभिव्यंजन जैसे अनेक कार्यों की अपेक्षा आज आलोचक से की जाने लगी है। प्रस्तुत कृति में आधुनिक हिन्दी-आलोचना की परिधि में आने वाले विविध सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रश्नों के विश्लेषण-क्रम में आलोचक के गहन दायित्व के आकलन की चेष्टा की गई है। लेखक ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० रामविलास शर्मा और डॉ० नामवर सिंह जैसे प्रख्यात् आलोचकों की सैद्धान्तिक मान्यताओं एवं व्यावहारिक समीक्षा-पद्धतियों के विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि इन आलोचकों ने किस सीमा तक और किस रूप में एक आदर्श आलोचक के दायित्व का निर्वाह किया है। आशा है यह कृति हिन्दी के विवेकशील एवं आग्रहमुक्त सुधी पाठकों के बीच प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगी।

सारस्वत बोध के प्रतिमान आचार्य रामचन्द्र तिवारी

डॉ० वेदप्रकाश पाण्डेय, डॉ० अमरनाथ

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-423-8

विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

मूल्य : 250.00

'सरस्वती-सदन' (बेतियाहाता, गोरखपुर) में निवास करने वाला 'सारस्वत बोध के प्रतिमान' से अलंकृत हो—यह अत्यन्त सहज है। प्रो० रामचन्द्र तिवारी पर लिखित। संकलित उक्त पुस्तक अनेक साहित्यक हलचलों की समुच्चय दिखायी पड़ती है। स्मरणीय है कि यह सारस्वत संकलन/लेखन प्रो० तिवारी के अष्टदशकीय कर्मनिष्ठ जीवन का पूँजीगत रूप है। पुस्तक को प्राय: छह खण्डों में विभाजित कर एक अकादमिक, स्तरीय तथा सराहनीय कार्य सम्पन्न हो सका है।

वस्तुत: पं० रामचन्द्र तिवारी एक कर्मनिष्ठ कलमकार तथा दशीय बोध से तृप्त आलोचकों के आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके अध्ययन की पद्धति अपनी है। उनके तर्क की लोल-लहर में बड़े-बड़े वैचारिक जहाज भी डूबते दिखायी पड़ते हैं। उनका साधुव्यक्तित्व सहज ही उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता है। उनकी अन्वेषी दृष्टि और दो टूक बात करने की शैली उनके नाथों, सिद्धों और संतों की 'रहनी' में विचरण करने का संकेत करती है। अद्यतन साहित्यिक गतिविधियों, धाराओं, चिंतनों, व्यक्तित्वों की पहचान उनके सिंहावलोकी प्रवृत्ति की सूचक है। उनकी अध्यापकीय शैली कितनों को सफल अध्यापक / आलोचक बना चुकी है। उनकी लेखन शैली ने अनेक शिष्यों, सम्पर्कीजनों का मार्जन किया है। उनके व्यक्तित्व की गहराई और ऊँचाई उनकी अधोगामी तथा ऊर्ध्वगामी देखने की शैली में निहित है। उनकी दृष्टि जब ऊर्ध्वगामी होती है तो मानो अनंत आकाश की पूरी परिधि अपने में समेट लेना चाहती है और अधोगामी होने पर सम्पूर्ण तलस्पर्शी तथा अज्ञात तथ्य को हिन्दी जगत के समक्ष अन्वेषित कर रचा देना चाहती है। उनकी साहित्यिक व्याख्या गद्य और कविता के आशय को पूर्णत: अनावृत कर देती है। सरदार पूर्ण सिंह के गूढ़ निबंधों को हृदयंगम करा देना प्रो० तिवारी जैसे 'सारस्वत बोध के प्रतिमान' के वश की ही बात है। प्रसन्नता है कि उक्त वैशिष्ट्यों का प्रतिध्वनन 'सारस्वत बोध के प्रतिमान' में न्यूनाधिक प्रकट हुआ है।

'आत्मकथा' में प्रो० तिवारी ने अपने जीवन और पारिवारिक परिवेश की किताब ही खोल दी है। यहाँ वे अपने प्रेरणास्पद व्यक्तित्व गाँधी का अनुगमन करते दिखायी पड़ते हैं। इस प्रकार की साफगोई कम लेखकों में मिलती है। कोई क्यों सृजन करता है इसकी विवृत्ति तिवारीजी के तीसरे लेख में देखी जा सकती है। साथ ही लेखन की सार्थकता और उपादेयता पर भी विचार हुआ है। संस्मरण में उनके पुत्र सत्यव्रत तिवारी का लेख मन को छूकर उनके आत्मज होने को सार्थक करता है। इस खण्ड में पुरुषोत्तमदास मोदी, रामदरश मिश्र के लेख विशेष महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। लिखा तो विश्वनाथप्रसाद तिवारी ने भी है पर उनका निशाना बहककर प्रो० भगवतीप्रसाद सिंह पर चला गया है। 'आलोचक व्यक्तित्व' में प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी, प्रो० युगेश्वर के लेख ही प्रो० तिवारी का सही मूल्यांकन कर सके हैं। 'कृति मूल्यांकन' में विष्णुकांत शास्त्री, कृष्णदत्त पालीवाल, सदानंद गुप्त के लेख कतिपय नवीन मान्यताएँ प्रदान कर सके हैं। 'साक्षात्कार' और 'परिशिष्ट' में प्रेमव्रत तिवारी का 'संकलन' पुस्तक की उपादेयता बढ़ा देता है।

सब मिलाकर कहा जा सकता है कि सम्पादकों ने शीघ्रता में यह सम्पादन किया है पर तथ्य से भरपूर सामग्री यहाँ अकस्मात आ गयी है। इसे और सुव्यवस्थित, सुविचारित तथा योजनाबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया गया होता तो एक ही लेखक से दो-दो लेख न लेने पड़ते और वैविध्य का फलक भी बड़ा होता।

शुभ लक्षण है कि ऐसे व्यक्तित्व के माध्यम से हिन्दी साहित्य के विविध परिदृश्यों का एकत्रीकरण सम्भव हो सका। इसके लिए सम्पादक, लेखक तथा प्रकाशक पुरुषोत्तमदास मोदी जो उनके अत्यन्त आत्मीय हैं, धन्यवाद के पात्र हैं। यह इसलिए भी कि प्रस्तुत पुस्तक एक व्यक्ति के जीवन की गाथा मात्र नहीं अपितु हिन्दी के तमाम अज्ञात एवं अनुद्घाटित अनुच्छेदों का उद्घाटन भी है। साथ ही हिन्दी के प्रति पूर्ण समर्पित एक तप:पूत जीवन का रचना संसार भी।

— उदयप्रताप सिंह, सारनाथ, वाराणसी

एक पाँव पर गाँव

(गजल संकलन)

डॉ० सत्यनारायण त्रिपाठी

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-459-9

विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

मूल्य : 100.00

पाँव गति है, प्रगति है और जीवन-पद्धतियों का निर्माता भी है। यह मनुष्य के दिक्काल की माप और उसकी गतिशीलता का सन्तुलन है। यह विकास का चरण, गतिविधि की पैरवी और सफलता का धावक है। साधना के लिए, यह एक पाँव है और कर्म के लिए दो पाँव। इसके अनियंत्रित होने पर पतन का खतरा है और फिसलने का भय। यह विलक्षण है। अंगद का अडिग पग, वीरों का डग और वामन का विराट पाँव है। यह आकाश-पाताल नाप चुका है। यह चमत्कारी है। इसकी रज के स्पर्श से शिला भी नारी हो गई है। वह सर्वत्र है। कर्म में है, धर्म में है, साहित्य में है, कला में है।

गाँव हम हैं, आप हैं, हमारा देश है, विश्व है। गाँव हमारे भीतर है, बाहर है। यही हमारा बाहरी

संसार है और हृदय का देश भी। आस्था और विश्वास का, प्रेम और श्रद्धा का यही तो गाँव है। यही हमारा भाव-संसार है, यही हमारे मन का गाँव है। इसका अपना अतीत वर्तमान और भविष्य है। यही हमारे पुरखों का गाँव है। 'एक पाँव पर गाँव' इसी की भावनात्मक अभिव्यक्ति है। संकेत-कथा है।

प्रस्तुत संकलन की गजलें कवि की संचित अनुभूतियों के अकस्मात-बोध की रचनाएँ हैं।

श्री श्री सिद्धिमाता

[कायाभेदी ब्रह्मवाणी तथा विवरण सहित]

राजबाला देवी

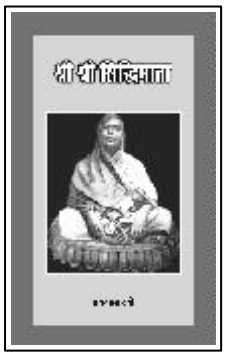

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-89498-07-X

अनुराग प्रकाशन,
वाराणसी

मूल्य : 80.00

श्री सिद्धिमाता सरलता, एकाग्रता, अटूट निष्ठा और एकमात्र भगवान् के चिन्तन में सम्पूर्ण जीवन का उत्सर्ग यह उनके जीवन की विशेषता थी। उन्होंने भगवद्भक्ति की सहायता से जीवन को सुदृढ़ वैराग्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया। पुस्तक की लेखिका श्रीमती राजबाला देवी ने माँ के पूर्व-जीवन की अनेक अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया है जो स्वानुभूत है अथवा माँ से साक्षात प्राप्त है।

पुस्तक की विस्तृत भूमिका में महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने माँ के कायाभेदी ब्रह्मवाणी तथा मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी जागरण क्रिया का विस्तृत वर्णन किया है।

कुण्डलिनी शक्तियोग तथा समाधि एवं मोक्ष

डॉ० दिनेश कुमार अग्रवाल

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-450-5

विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

मूल्य : 80.00

पातञ्जल-योग सूत्र एकमात्र ग्रन्थ है जिसके बताए साधनों से कुण्डलिनी का जागरण होता है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञानी हैं ने कुण्डलिनी शक्तियोग के विषय में प्राचीन योगशास्त्रों के आधार पर प्रयोजन, लक्ष्यादि का बड़े विस्तार और मननपूर्वक अध्ययन से योग विद्या का प्रतिपादन किया है।

पुस्तक के प्रमुख अध्याय—1. तात्त्विक विषयों का सार, 2. बन्धन और मुक्ति, 3. मोक्ष, 4. कुण्डलिनी-शक्तियोग, 5. आधुनिक विज्ञान और कुण्डलिनी-शक्ति, 6. अष्टाङ्ग योग, 7. चक्रों की शक्तियाँ, 8. दो प्रकार की कुण्डलिनी, 9. पंच प्राण, 10. पंच वायु, 11. कुण्डलिनी-जागरण में बन्धों का महत्त्व, 12. आठ सिद्धियाँ, 13. उपसंहार, 14. सारांश, पारिभाषिक शब्दावली।

कलागुरु केदार शर्मा के व्यंग्य चित्रों में काशी

डॉ० धीरेन्द्रनाथ सिंह

प्रथम संस्करण : 2005

ISBN : 81-7124-395-9

विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी

मूल्य : 300.00

काशी सांस्कृतिक नगरी है। यह साधु-सन्तों, साहित्यकारों, संगीतकारों, कलाकारों और साधकों की साधना-भूमि है। इसी भूमि में चित्रकार केदार शर्मा ने कला-साधना की थी।

काशी ज्ञान का क्षेत्र है। ज्ञान जिसे मिल जाता है, वह इस नगरी को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता। चित्रकार केदार शर्मा ऐसी ही विभूति थे।

वे काशी की जीवन-शैली से विमुग्ध थे। उन्होंने चित्रकला को जनसामान्य से जोड़ा तथा चित्रकला की व्यंग्य-चित्रशैली को उन्होंने नया आयाम दिया।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त की संस्था 'ज्ञानमण्डल प्रकाशन' के प्रबन्धक पद्मसिंह शर्मा 'बिहारी सतसई' की टीका लिख रहे थे। कलागुरु ने उनके सम्पर्क में आकर बिहारी के दोहों पर व्यंग्यचित्र बनाए। वे व्यंग्य चित्र चित्रकला-जगत की अन्यतम रचना हैं। इस संकलन में उनके 28 व्यंग्य-चित्र संकलित किए गए हैं।

कलाशिल्पी केदार शर्मा चालीस के दशक में 'आज' में कलाकार के पद पर कार्यरत थे। वे अखबार और उसके साप्ताहिक संस्करण की साज-सज्जा के साथ व्यंग्यचित्र भी बनाया करते थे। उनके व्यंग्यचित्र दैनिक 'आज' और साप्ताहिक 'आज' में छपा करते थे। वे राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक और सामान्य वर्ग के हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने काशी के जीवन पर भी व्यंग्यचित्र बनाए थे। उनके व्यंग्यचित्रों की संख्या बहुत है, किन्तु सबका प्रकाशन करना सम्भव नहीं है। इसलिए इस पुस्तक में प्रतिनिधि व्यंग्यचित्रों का ही संकलन किया गया है।

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में ईसाई धर्म का योगदान

डॉ० एम० संतियागो

प्रकाशक
डॉयोसीस ऑफ वाराणसी
बिशप हाउस 45, वाराणसी

मूल्य : 150.00

भारत में सांस्कृतिक चेतना जगाने और नवजागरण की प्रेरणा देने में ईसाई मिशनरियों का बहुत बड़ा अवदान है। ईसाई मिशनरियों ने ईसाई धर्म का भारत में प्रचार के साथ दलितों तथा सुबुद्धों को अपने धर्म दीक्षित किया तो दूसरी ओर गरीबों को शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया और भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य को उजागर करने में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। डॉ० एम० संतियागो की कृति 'हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में ईसाई धर्म का योगदान' भारत में ईसाई धर्म के प्रचार और विशेष रूप से हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के लिए किये गये कार्यों का समीक्षात्मक इतिहास है।

पुस्तक के प्रारम्भिक दो भागों में भारत में ईसाई मिशनरियों के ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार का लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से भारत में 'दो हजार वर्षों में ईसाई मिशनरियों' की गतिविधियों की पाठकों को सही जानकारी मिल जाती है। लेखक ने सहज भाव से ईसाई गतिविधियों की प्रस्तुति की है।

ईसाई मिशनरियों का काम केवल धर्म प्रचार करना मात्र नहीं था। वे स्थानीय जनता की भाषा और साहित्य का गम्भीरता से अध्ययन करके ईसाई जनता के लिए क्षेत्रीय भाषा, साहित्य, कोश, इतिहास आदि पक्षों पर पुस्तकें तैयार करना और उसका जनता में प्रचार करना भी इनका लक्ष्य रहा है। प्रस्तुत कृति में ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दी के इतिहास लेखन, हिन्दी कोश, मुहावरा कोश, कहावत कोश, व्याकरण सहित लगभग भाषा की अन्य विधाओं पर कार्य किया है। ऐसे भाषाविद और वैयाकरणों में फादर हेनरिख रॉथ, जॉन जोशुआ कटेलर, शुल्ज, जार्ज हेडले, विलियम किर्कपैट्रिक, जान बार्थलिक, गिलक्राइस्ट, थामस शेयबक, एम०डी० एडमस, विलियम येट्स, डंकन फार्बेस, फ्रेडरिक पिन्काट, एस० डब्लू फैसन, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का नाम उल्लेखनीय है।

लेखक ने अपने विषय का प्रतिपादन बड़े निष्पक्ष तथा अधिकाधिक तथ्यों को प्रस्तुत कर किया है। ऐसी अच्छी कृति के लिए लेखक को अनेक बधाइयाँ। **—धीनासि**

शिखरिणी
(नवगीतों का संकलन)
बुद्धिनाथ मिश्र

प्रकाशक
आर्य बुक डिपो, करोलबाग,
नई दिल्ली–110005
पृष्ठ : 200 मूल्य : 175.00

नवगीत आन्दोलन के सुकंठ गीतकार बुद्धिनाथ मिश्र की नवप्रकाशित दूसरी काव्य-रचना 'शिखरिणी' नाम से आयी है। इनका पहला गीति-रचना 'जाल फेक रे मछेरे' नाम से सन् 1989 में आई थी। प्रस्तुत पुस्तक में इनके 102 गीत हैं जो बिम्ब और प्रतीक से आबद्ध होकर सरस और माधुर्य से पूर्ण हैं। इनके गीतों के यात्रा-क्रम में इतनी दूरी क्यों हुई, इसका स्पष्टीकरण इन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के प्राक्कथन (अक्षरों के शान्त नीरव द्वीप पर) में किया है। बुद्धिनाथजी मंच के कुशल गायक रहे हैं और इनके गेय पदों में जो सरसता है, वह श्रोताओं के लिए मधुर और प्रियकर है। एक समय था जब बुद्धिनाथजी से मंच की शोभा होती थी, श्रोता भाव-विभोर होते थे।

इनका मानना है कि ''गीतों का ही संकलन अक्षरों का एक शान्त नीरव द्वीप है।'' जो भी हो, 'शिखरिणी' शब्द में, उस छन्द और लय में, जो रससिक्तता है, वह इसमें भी है, श्रोताओं और पाठकों का यह सुमधुर पद-संकलन आप्यादित करेगा।—**पानासि**

महाराणा सांगा और युवरानी मीरां
राजेन्द्रशंकर भट्ट

प्रकाशक
पुनीत प्रकाशन, जयपुर-8
मूल्य : 300.00

ऐतिहासिक महत्व की उपर्युक्त पुस्तक के लेखक श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट ने उपलब्ध तथ्यों तथा अनुसन्धान के आलोक में बताया है कि राजपूताने के इतिहास में मेवाड़ के महाराणा कुंभा, सांगा (संग्राम सिंह) और महाराणा प्रताप राजसत्ता के शिखर पुरुष रहे हैं। सांगा को शासनाधिकार अकल्पनीय परिस्थितियों में प्राप्त हुआ। अंग-भंग उन्हें राष्ट्रधर्म के निर्वहन में सीमित नहीं कर सके। उनके शरीर पर 84 घाव थे जो 17 युद्धों में उनकी विजय का उपहार। मेवाड़ का इतिहास जानने के लिए यह पुस्तक मार्गदर्शक है। —**पानासि**

पुस्तक-प्राप्ति

मदनमोहन-मालवीय-कीर्तिमञ्जरी नाटकम्
रामजी उपाध्याय
प्रकाशक
भारतीय संस्कृति-संस्थानम्, वाराणसी

भारत की महान विभूतियाँ
(अमीर ख़ुसरो, संत कबीर, बिहारी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला')
डॉ० अमर सिंह वधान
प्रकाशक : शबरी शिक्षा संस्थान, Salem-636 001
मूल्य : 25.00

क्या फर्क पड़ता है।
श्याम सखा 'श्याम'
प्रकाशक : प्रयास ट्रस्ट, रोहतक
मूल्य : 40.00

अकथ
डॉ० श्याम सखा 'श्याम'
प्रकाशक : सुन्दर साहित्य सदन, दिल्ली
मूल्य : 100.00

तुम मेरी तलाश
डॉ० महेश भार्गव 'विभोर'
प्रकाशक : राखी प्रकाशन, आगरा
मूल्य : 90.00

आस्था के फूल
राधेश्याम पाण्डेय 'सिसवाँ वाले'
प्रकाशक : अविचल प्रकाशन, बिजनौर
मूल्य : 60.00

सभी समय के दास
ए०बी सिंह
प्रकाशक : रेखा प्रकाशन, चित्तौड़गढ़
मूल्य : 195.00

भारतीय वाङ्मय
मासिक
वर्ष : 6 **नवम्बर 2005** **अंक : 11**

प्रधान सम्पादक
पुरुषोत्तमदास मोदी

सम्पादक
परागकुमार मोदी

वार्षिक शुल्क
रु० 50.00

अनुरागकुमार मोदी
द्वारा
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
के लिए प्रकाशित
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
वाराणसी
द्वारा मुद्रित

E-mail : sales@vvpbooks.com
Website : **www.vvpbooks.com**

डाक रजिस्टर्ड नं० ए डी-174/2003
प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट 1807 ई० धारा 5 के अन्तर्गत
Licenced to post without prepayment at
G.P.O. Varanasi
Licence No. LWP-VSI-01/2001

RNI No. UPHIN/2000/10104

सेवा में,

प्रेषक : (If undelivered please return to :)

विश्वविद्यालय प्रकाशन
प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
(विविध विषयों की हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी पुस्तकों का विशाल संग्रह)
विशालाक्षी भवन, पो०बाक्स 1149
चौक, वाराणसी-221 001 (उ०प्र०) (भारत)

VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN
Premier Publisher & Bookseller
(BOOKS IN HINDI, SANSKRIT & ENGLISH FOR STUDENTS, SCHOLARS, ACADEMICIANS & LIBRARIAN)
Vishalakshi Building, P.O. Box : 1149
Chowk, VARANASI-221 001(U.P.) (INDIA)

☎:Off.:(0542)2421472,2413741,2413082,(Resi.)2436349,2436498,2311423 ●Fax:(0542)2413082